आचार्यश्री शिवार्य विरचित भगवती आराधना के

# धारण करें उदाहरण

संकलन

मुनि संधानसागर

आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज

# गुणायतन

मधुवन, पो. शिखरजी
( झारखण्ड )

मुनि श्री 108 प्रमाणसागर जी महाराज

# धारण करें उदाहरण

## आचार्यश्री शिवार्य विरचित भगवती आराधना

( आचार्य श्री अपराजित सूरि रचित विजयोदया टीका तथा तदनुसारी हिन्दी टीका से कुछ चुनिन्दा उदाहरण )

संकलन

**मुनि श्री 108 संधानसागर जी महाराज**

प्रकाशक

**निर्ग्रन्थ फाउण्डेशन, भोपाल**

- कृति : धारण करें उदाहरण
- मूलस्रोत : आचार्यश्री शिवार्य विरचित भगवती आराधना
- आशीर्वाद : संत शिरोमणि पूज्य गुरुवर 108 आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज
- संकलनकर्ता : मुनि श्री 108 संधानसागर जी महाराज
- संस्करण : प्रथम, दिसम्बर 2020
- आवृत्ति : 1100
- मूल्य : स्वाध्याय/सदुपयोग
- पुण्यार्जक : स्व. श्री विजय छावड़ा, रांची की
  12वीं पुण्यतिथि (दिनांक 29 दिसम्बर 2008) पर सादर सप्रेम भेंट
  श्री टीकमचंद-तारादेवी, श्रीमती अंजुदेवी, हनि-डिम्पल, अमन-सुप्रिया,
  अर्हम छाबड़ा एवं समस्त छाबड़ा परिवार (कोछोर वाले), रांची (झारखण्ड)
- प्राप्ति स्थल : 1. श्री प्रशान्त जैन, भोपाल (म.प्र.) मो. 9617700813
  2. 'गुणायतन' शिखर जी, मधुवन फोन : 06558-232438
- प्रकाशक : निर्ग्रन्थ फाउण्डेशन, भोपाल
- मुद्रक : विकास आफसेट प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स, 45, सेक्टर-एफ, औद्योगिक क्षेत्र, गोविन्दपुरा, भोपाल (म.प्र.)
  फोन : 0755-2601952, 09425005624


**इस पुस्तक की PDF एवं**
**अन्य ढेर सारी जानकारी हेतु**
**Login जरूर करें :-**
**http://108guruvani.blogspot.com**

# मंगल-कामना

''जन्म हुआ है तो मरण भी होगा, ये प्रकृति का नियम है। जिस दिन जन्म होता है उसी दिन मरण का भी निश्चित हो जाता है क्योंकि जो जीव जितनी आयु बांधकर आता है वह उतने ही समय जीता है। उसको एकक्षण भी कोई भी नहीं बढ़ा सकता, हाँ शास्त्रों में आता है कि हम उसे कई कारणों से कम अवश्य कर सकते हैं, जिसे अकाल मरण कहते हैं। अकाल में मरण न हो तथा जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो जायें इसके लिए आचार्यों ने चार आराधना (दर्शन, ज्ञान, चारित्र एवं तप) बताई है। इन आराधनाओं का सम्यक् रीति से पालन कर हमेशा-हमेशा के लिए संसार से मुक्त हुआ जा सकता है / होते हैं। संसार में सबसे बड़ा दुःख है तो जन्म-मरण का ही दुख है। हर व्यक्ति इससे छूटना चाहता है। जो मरण से डरता है उसे भी सोचना है कि मरण तो अवश्य होगा। अब आप हंसकर मरें या रोकर मरें। संसार के बहुतेरे व्यक्ति तो रोते हुये अस्पतालों में ही अपने जीवन को समाप्त करते हैं। बिरले होते हैं जो आगमानुसार आराधना का पालनकर सम्यक् रीति से इस देह का विसर्जन करते हैं। मृत्यु को भी महोत्सव मानकर सहर्ष स्वीकार करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में उन्हीं उदाहरणों से बहुत ही सरल तरीके से जीवन जीने का सही तरीका या यूँ कहूँ मृत्यु को महोत्सव बनाने का तरीका बताया गया है। जैन धर्म के श्रेष्ठ **आचार्य श्री शिवार्य महाराज** द्वारा विरचित '**भगवती आराधना**' नामक महान ग्रन्थराज जिसकी आचार्य देव श्री अपराजित सूरि ने विजयोदय टीका की है एवं उसके अनुसार ही हिन्दी टीका लिखी है उसी में से कुछ चुनिन्दा

उदाहरणों को आपके समक्ष प्रस्तुत किया है। केवल इस भावना से कि उतने बड़े ग्रन्थराज को तो पढ़ने का आपके पास समयाभाव है, उसके कुछ पुष्पों से भी आप अपने जीवन में सुगन्ध ला सकते हैं।

जब आचार्य भगवन् संघ में इस ग्रन्थराज का स्वाध्याय करा रहे थे तभी परम पूज्य मुनिश्री 108 प्रमाणसागर जी महाराज ने हमें भी इसका स्वाध्याय के माध्यम से अमृतपान कराया। उसी समय पूज्य महाराज श्रीजी ने कई बार कहा था कि इस ग्रन्थ के उदाहरण बहुत ही सटीक एवं सरल भाषा में हैं। पूज्य आचार्य भगवन् के मुख से भी कई बार इसके उदाहरण सुनने को मिले। मन में एक भावना जागी कि इन उदाहरणों को जन-जन तक पहुँचाये तो सभी अपने जीवन में परिवर्तन ला सकते हैं। बस '**धारण करें भगवती उदाहरण**' नाम की इस पुस्तिका का संकलन हुआ।

सुदी पाठक इसे पढ़कर अपने जीवन को धन्य करेंगे एवं एक-एक कदम आगे बढ़कर अपना मोक्षमार्ग प्रशस्त करेंगे। इसी भावना के साथ पूज्य गुरुवर के पावन चरणों एवं पूज्य मुनिश्री को बारम्बार नमोस्तु करते हुये....

- **चरणरज चंचरीक**

''जैसे जो सेवक स्वामी के द्वारा कहे गये कार्य में प्रवृत्त नहीं होता उसे दुष्ट कहा जाता है। उसी तरह मन भी आत्मा के द्वारा नियुक्त कार्य में प्रवृत्त न होने से दुष्ट कहा जाता है।''

''वस्तु के अविद्यमान स्वरूप को ग्रहण करने में और विद्यमान स्वरूप का निरास करने में प्रवृत्त हुए मन को उससे हटाना वैसे-ही अशक्य है जैसे पहाड़ी नदी के प्रवाह को लौटाना अशक्य होता है; क्योंकि मन रागादिभाव में आसक्त होता है।''

''जैसे कुमार्ग पर चलते हुए दुष्ट घोड़े को रोकने से वह मार्ग में गिरा देता है वैसे-ही मन भी खोटे मार्ग में गिराता है। जैसे चिकने शरीर वाली मछली को पकड़ना कठिन है वैसे ही मन को रोकना बहुत कठिन है।''

''वश में न आने वाले दासी पुत्र को जैसे कोई बलपूर्वक अपने वश में करता है, वैसे ही जो जिनागम का अभ्यासी अशुभपरिणामों के प्रवाह में प्रवृत्त हुए अपने मन को बलपूर्वक उसकी डाँट फटकार करके इष्ट शुभ भावों की परम्परा के अनुकूल बनाता है।''

‘‘जब विघ्न अन्तराय कर्म के आधीन है तो उसके होते हुए विघ्न क्यों नहीं होगा ? जैसे धान्य आदि के अंकुरकी उत्पत्ति बीज, जल, पृथ्वी और सूर्य की किरणों के समूह के अधीन है। अतः अपनी कारण सामग्री के परिपूर्ण होने पर उसकी उत्पत्ति साल, तमाल आदि के रहते हुए भी अवश्य होती है। उसी तरह विघ्न को भी जानना चाहिए’’।

''जिसका विरोधी जहाँ होता है वहाँ वह ठहर नहीं सकता। जैसे शीत स्पर्श से व्याप्त चन्द्रमा में उष्णता नहीं ठहरती। निश्चयात्मक ज्ञान संशय का विरोधी है अतः इन दोनों में नियम से विरोध है; क्योंकि एक के रहते हुए वहाँ उस समय दूसरा नहीं रहता।''

''जिस शब्द का जो विशेष अर्थ होता है वह भी उपलक्षण से सामान्य रूप लिया जाता है। जैसे 'कौओं से घी को बचाओ' यहाँ काक शब्द का अर्थ उपघातक सामान्य ही है अर्थात् जो धी को हानि पहुँचा सकते हैं उन सबसे भी घी को बचाओ।''

''दर्शन आराधना का कथन करने पर ज्ञान आराधना को भी जानना शक्य है। जैसे आग लाने की प्रेरणा करने पर उसको लाने के लिस सकोरा आदि किसी एक पात्र मात्र का बोध हो जाता है।''

''जैसे शिशु उठना चाहते हुए भी गिरता है वैसे ही हम लोग चारित्र के अभिलाषी होते हुए भी उसे धारण करने में असमर्थ रहते हैं।''

''जो जिसका धर्म होता है वह उसका स्वरूप होता है एक धर्मी का स्वरूप दूसरे धर्मी का नहीं हो सकता। बगुलों की पंक्ति का धर्म शुक्लता कभी भी कुन्द के फूलों का धर्म नहीं हो सकती। इसी तरह मतिज्ञान की निर्मलता श्रुतादि ज्ञानों की नहीं हो सकेगी और न श्रुतादि ज्ञानकी निर्मलता मतिज्ञान की। इस प्रकार ज्ञान भेद होने पर उन ज्ञानों में होने वाली निर्मलता में भी भेद होता है।''

**‘‘बन्धरहित निर्जरा मोक्ष प्राप्त कराती है, बन्ध के साथ होने वाली निर्जरा नहीं। जैसे मन्थनचर्मपालिका का वह तो बन्ध-सहित मुक्ति देती है अर्थात् मथानी चलाते समय एक ओर से रस्सी छूटती जाती है किन्तु साथ ही दूसरी ओर से लिपटती जाती है।’’**

''जो पदार्थ त्यागने योग्य होता है, उसे जाने बिना भी उसका त्याग देखा जाता है, जैसे कोई शत्रुओं से युक्त स्थान को छोड़ता है। यद्यपि वह उस स्थान में उनके आवास को नहीं जानता, फिर भी दूसरे मार्ग से चला जाता है। इस प्रकार त्यागने योग्य को नहीं जानते हुए भी त्यागना चाहिए।''

''निर्वाण का अर्थ विनाश है। कहा जाता है दीपक का निर्वाण हो गया अर्थात् दीपक नष्ट हो गया। इस तरह यद्यपि निर्वाण शब्द का अर्थ विनाश मात्र है तथापि उत्पन्न हुए कर्मों को नष्ट करने की शक्ति वाले चारित्र शब्द का प्रयोग होने से कर्मों का विनाश अर्थ लिया जाता है।''

"जैसे राजपुत्र योग्य शस्त्र प्रहार का अभ्यास युद्धकाल से पहले प्रतिदिन भी करता है। पश्चात् शस्त्र प्रहार रूप क्रिया को अपने अधीन करके युद्ध करने में समर्थ होता। इसी प्रकार साधु भी ध्यान का परिकर्म जो (सामण्णं) श्रामण्य है उसे नित्य भी करता है, कि इसके पश्चात् मन को वश में करके मैं मरते समय ध्यान में समर्थ होऊँगा।"

"जैस अभ्यास किया हुआ राजपुत्र लक्ष्य को वेधने आदि की क्रिया में कुशलता प्राप्त करके शस्त्रप्रहार आदि के द्वारा राज्य लाभ करता है। उस राजपुत्र की ही तरह पूर्व में समानभाव का अभ्यासी साधु मिथ्यात्व आदि शत्रुओं को पूरी तरहसे जीतकर शोभनीय संस्तररूपी रंगभूमि में आराधनारूपी पताका को ग्रहण करता है।"

''जैसे यदि किसी को किसी ठूँठ से अचानक धन का लाभ हो जाये तो उसे सर्वत्र प्रमाण नहीं माना जाता। उसी तरह यदि किसी ने मरने से पूर्व रत्नत्रय का अभ्यास नहीं किया और कदाचित् मरते समय किया और उसे सिद्धि प्राप्त हो गई तो उसे सर्वत्र प्रमाण के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता।''

''जैसे समुद्र वगैरह में तरंगे निरन्तर उठा करती हैं उसी प्रकार क्रम से आयु नामक कर्म प्रतिसमय  उदय में आता है इसलिए उसके उदय को आवीचि शब्द से कहा है। आयु के अनुभवन को जीवन कहते हैं। वह प्रतिसमय होता है। उसका भंग मरण है। अतः जीवन की तरह मरण भी आवीची है क्योंकि आयु का उदय प्रतिसमय होता है अतः प्रत्येक अनन्तर समय में मरण भी होता है। उसी प्रति समय होने वाले मरण को आवीचिमरण कहते हैं।''

**''कषाय शब्द से वनस्पतियों के छाल, पात्र, जड़ और फल का रस कहा जाता है। वह रस जैसे वस्त्रादिके रंग को बदल देता है इसी प्रकार जीव के क्षमा, मार्दव, आर्जव और सन्तोष नामक गुणों को नष्ट करके अन्यथा कर देते हैं इसलिए क्रोध, मान, माया, लोभ को कषाय कहते हैं।''**

''जैसे हाथी स्नान करके शरीर के भींग जाने से अपनी सूँड द्वारा अपने ऊपर डाली गई बहुत-सी धूल ग्रहण कर लेता है। उसी तरह असंयमी तपके द्वारा कुछ कर्मों की निर्जरा करके भोजनादि की लम्पटतावश बहुत अधिक कर्मबन्ध करता है।''

''अपेक्षा भेद से विरतपने और अविरतपने में विरोध का कोई स्थान नहीं है। जैसे एक द्रव्य में एक ही समय में द्रव्य रूप की अपेक्षा नित्यपना और पर्यायरूप की अपेक्षा अनित्यपना में कोई विरोध नहीं आता।''

''विशिष्ट वस्तु ही सुखादि का साधक होती है। जैसे स्त्री, वस्त्र, गंध, माला आदि जो उत्तम होती है उसे ही ग्रहण करने के लिए उत्साहित होते हैं। दुःख के साधन कण्टक आदि अपने निकटवर्ती भी हों तो उन्हें छोड़ देते हैं अतः शब्द के द्वारा भी सुखादिक अर्थी पुरुषों को विशिष्ट वस्तु ही प्रतिपाद्य है ऐसा स्वीकार करना चाहिए।''

''जैसे बड़े कुण्ड में भरे हुए बहुत दूध को भी विष का कण दूषित कर देता है उसी प्रकार अश्रद्धान का एक कण भी आत्मा को दूषित कर देता है।''

''जैसे मद्य का सेवन बुद्धि को मन्द और विपरीत कर देता है वही दशा इस दर्शन मोहनीय कर्म की है।''

''मिथ्यात्व का वेदन-अनुभवन करने वाला जीव विपरीत श्रद्धा वाला होता है। उसे धर्म नहीं रुचता। जैसे ज्वर से ग्रस्त व्यक्ति को निश्चय से मधुर रस नहीं रुचता।''

''जैसे राग-द्वेष से रहित और तीनों लोकों के चूड़ामणि अर्हन्त आदि भव्य जीवों के शुभोपयोग में निमित्त होते हैं, उन्हीं की तरह उनके ये प्रतिबिम्ब भी शुभोपयोग में निमित्त होते हैं। क्योंकि बाह्य द्रव्य का आलम्बन लेकर शुभ अथवा अशुभ परिणाम होते हैं। जैसे मनोज्ञ और अमनोज्ञ विषयों की समीपता से आत्मा में राग-द्वेष होते हैं या जैसे अपने पुत्र के समान व्यक्ति का दर्शन पुत्र की स्मृति का आलम्बन होता है। इसी तरह प्रतिबिम्ब अर्हन्त आदि के गुणों के स्मरण में निमित्त होता है।''

"धर्म दुःख से रक्षा करता है, सुख देता है, नवनिधि और चौदह रत्नों का स्वामी बनाता है। जो मोक्ष शरीर को विरूप करने वाली जरा रूपी डाकिनियों के लिये अत्यन्त दूर है। अर्थात् वहाँ बुढ़ापा नहीं है, शोकरूपी भेड़िये वहाँ नहीं पहुँच सकते, विपत्तिरूपी वन की आग की शिखा वहाँ नहीं है, रोग रूपी सर्प वहाँ नहीं डसते, यमराज का भैंसा अपने खुरों से उसे खंडित नहीं करता, भयरूपी सूकरों का समूह वहाँ नहीं पहुँचता, सैकड़ों संक्लेश रूपी शरभ वहाँ नहीं रहते, प्रियजनों का वियोगरूपी प्रचण्ड आघात नहीं है और जो मोक्ष अमूल्य सुख रूपी रत्नों का उत्पत्ति स्थान है वह धर्म से प्राप्त होता है।"

''मिथ्यात्व से दूषित अहिंसा आदि गुण वाले आत्मा के कटुक तूम्बी में रखे दूध की तरह निष्फल होते हैं। दूध का फल चित्त आदि को शान्त करना प्रसिद्ध है। किन्तु भाजन में दोष होने से वह दूध फल रहित होता है इसी तरह मिथ्यात्ववान् आत्मा में रहने वाले अहिंसा आदि गुण अपना साध्य जो फल है उससे फलवान नहीं है।''

''जैसे औषध भी विष से सम्बद्ध होने पर दोष करती है। उसी प्रकार मिथ्यात्वरूपी विषय सम्बद्ध अहिंसा आदि गुण भी दोषकारी होते हैं।''

‘‘जैसे एक दिन में सौ योजन भी चलनेवाला यदि अन्य मार्ग से जाता है तो वह पुरुष अपने इच्छित देश को नहीं प्राप्त होता। अपने इच्छित देश में न पहुँचने में हेतु है उसका सही मार्ग से न चलना। उसी प्रकार अत्यन्त भी चारित्र का पालन करने वाला उग्र तप करते हुए भी मिथ्यादृष्टि इष्ट प्रधान मोक्ष नहीं पाता।’’

‘‘जैसे दक्षिण मथुरा से पाटलीपुत्र जाने का इच्छुक यदि दक्षिण दिशा में जाता हैं तो वह पाटलीपुत्र नहीं पहुँच सकता। उसी तरह मिथ्यादृष्टि भी प्रधानभूत मोक्ष को नहीं प्राप्त करता; क्योंकि मोक्ष का मार्ग या उपाय क्षायिकज्ञान और क्षायिक चारित्र है।’’

''साधन सामग्री जुटा लेने पर ही कर्ता लोक में क्रिया की साधना के लिये उद्योग करता है। घट आदि बनाने में लगे कुम्भकार साधन सामग्री कर लेने पर ही कमर बाँधकर तैयार देखे जाते हैं। ज्ञान के बिना विनय आदि नहीं किये जा सकते, इसलिये उनसे पहले शिक्षा का निर्देश योग्य है।''

''जैसे कवच में सैकड़ों बाणों के लगने से होने वाले दु:ख को दूर करने की सामर्थ्य है वैसे-ही निर्यापकाचार्य धर्मोपदेश देते हैं- जैसे शौर्य का बखान करने की इच्छा से बालक में प्रयुक्त सिंह शब्द शौर्य आदि गुणों से युक्त देवदत्त का बोध कराता है।''

‘‘प्रियवचन बोलने में वाचाल बन्धुजन कठिनता से टूटने वाली सांकल के समान है किन्तु साधुगण इस सांकल को तोड़ डालते हैं, उनका हृदय अत्यन्त दुस्तर संसाररूपी भंवर मं चिरकाल तक भ्रमण करने से भयभीत रहता हैं।’’

‘‘परिग्रहवान ऐसा होता है मानो छाती पर पहाड़ रखा है। कैसे अन्य चौर आदि से इस परिग्रह की रक्षा करूँ इस प्रकार चित्त में बड़े भारी खेद के होने से लाघव होता है।’’

''जैसे घट बनाने का इच्छुक कपड़ा बुनने के साधन तुरि आदि को ग्रहण नहीं करता इसी तरह मुक्ति का इच्छुक साधु वस्त्र ग्रहण नहीं करता क्योंकि वस्त्र मुक्ति का उपाय नहीं है और जो अपने को इष्ट वस्तु का उपाय होता है उसे नियम से ग्रहण करता है। जैसे घट का अर्थी चाक आदि को अवश्य ग्रहण करता है। उसी तरह साधु भी अचेलता को ग्रहण करता है और अचेलता ज्ञान और दर्शन की तरह मुक्ति का उपाय है यह जिन भगवान के आचरण से सिद्ध है।''

''जैसे बैल वगैरह दुःख देने से शान्त हो जाते हैं वैसे ही दुःख भावना से मद का निग्रह होने पर सभी शान्त हो जाते हैं। सुख में आसक्त नहीं होता। सुख ही मनुष्य को सुखलम्पट बनाता है। अन्तरंग में दुःख की भावना भाने पर सुख की आसक्ति कम होती है सुख की आसक्ति का मूल है सुख का उपभोग। उसका अभाव होने से सुख की सक्ति नहीं होती। जैसे बीज के अभाव में अंकुर उत्पन्न नहीं होता।''

''जैसे घट बड़े पेट आदि आकारवाला होता है, पटादिरूप से उसका ग्रहण नहीं होता। यदि घट का पट रूप से ग्रहण हो तो वह ज्ञान विपरीत कहलायेगा। इसी तरह जो हित से विलक्षण अहित को नहीं जानता वह उससे विलक्षण हित का भी ज्ञाता नहीं हो सकता। अतः जो हित को जानता है वह अहित को भी जानता है। इसलिए उसकी अहित से निवृत्ति उचित ही है।''

वृक्षों की छाल के रस को कषाय कहते हैं। जैसे कषाय- वृक्ष की छाल का रस यदि वस्त्र पर लग जाता है तो उसकी सफेदी को हर लेता है और उसे दूर करना अशक्य होता है। उसी तरह क्रोधादि आत्मा की ज्ञान दर्शन रूप शुद्धि को नष्ट कर देता है और आत्मा से सम्बद्ध होने पर बड़े कष्ट से छूटता है तथा जैसे कषाय वस्त्रादिको टिकाऊ करती है वैसे ही क्रोधादि आत्मा में कर्मों की स्थिति को बढ़ाते हैं।

''जैसे जो 'आशु' शीघ्र चलता है वह अश्व ( घोड़ा ) हैं ऐसी व्युत्पत्ति होने पर भी व्याघ्र आदि को अश्व नहीं कहते, बल्कि प्रसिद्धिवश घोड़े को ही अश्व कहते हैं। वैसे ही जो अवश्य कर्म हैं, उसे आवश्यक कहते हैं, उसे आवश्यक कहते हैं- यहाँ-वहाँ घूमना, रोना, चिल्लाना आदि, उन्हें आवश्यक नहीं कहते।''

''जैसे जंगली औषधी हित का कारण होने से हित कही जाती है वैसे ही जो दान आदि सत्कार्य करते हैं लोग उनकी स्तुति और वन्दना करते हैं।''

''संकल्प करने वाले के शरीर में आदर का अभाव होने से काय का त्याग घटित होता ही है। जैसे प्राणों से भी प्यारी पत्नी अपराध करने पर उसमें अनुराग न रहने से 'यह मेरी है' इस प्रकार का भाव न होने से एक ही घर में रहते हुए भी 'त्यागी हुई' कही जाती है।''

''जिस प्रकार इच्छित वस्तु को देने में समर्थ रत्न दुर्लभ हैं उसी तरह सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रत्न शब्द से कहे गये हैं।''

'विणओ मोक्खद्दां'

विनय मोक्ष का द्वार है।

जैसे द्वार इष्ट देश की प्राप्ति का उपाय होता है उसी तरह समस्त कर्मों के विनाश रूप मोक्ष की प्राप्ति का उपाय विनय है इसलिये मोक्ष का द्वार कहा है।

"जहाँ कार्य की सिद्धि क्रम को अपनाये बिना नहीं होती वहाँ उपायों का क्रम अपनाना होता है। जैसे जो घड़ा बनाना चाहता है। वह पहले मिट्टी को मलता है, फिर उसका पिण्ड बनाता है, फिर उसे चाक पर रखता है आदि।"

"विनय करना आत्म शुद्धि का अर्थात् ज्ञान दर्शन और वीतराग रूप परिणति का निमित्त है। अथवा ज्ञानादि विनय रूप परिणति कर्म मल के विनाश से प्राप्त होती है अतः उसे आत्मा की शुद्धि कहते हैं। जैसे कीचड़ के दूर होने से जलादिकी शुद्धि होती है।"

''जैसे राग, कोप, भय और दुःख आदि परिणाम नट आदि के अधीन होते है क्योंकि उनका कार्य देखकर दर्शकों को रागादि होते हैं। इससे अनुमान किया जाता है कि रागादि परिणाम नट वगैरह के वशवर्ती हैं। उसी तरह नोइन्द्रिय मति भी आत्मा की इच्छा से किसी एक विषय में रुकी हुई अनुभव में आती है। अर्थात् आत्मा की इच्छानुसार भाव मन किसी भी विषय में लीन हो जाता है।''

''जैसे किसी उज्जयिनी के निवासी को जो दक्षिणापथ की ओर जाता था किसी ने कहा कि द्रमिल देश में अन्न की कमी है और क्षुद्र जनों से भरा है। उसके ऐसा कहने पर वह जान लेता है कि यह देश सुभिक्षशाली और सुजनों से भरा है। उसी तरह चित्त की चंचलता में दोष कहने के बहाने से आचार्य यह दृढ़ करते हैं कि मन को निश्चल करना चाहिए।''

''यह भोग सम्पदा दुष्टजन की मैत्री की तरह अनेक दुःखों की परम्परा को उत्पन्न करने वाली हैं, चंचल है,पाप पुण्य कर्म के समान पराधीन है,जैसे कुकुविकी रचना में अल्पसार होता है वैसे ही इस भोग सम्पदा में भी सार नहीं है। जैसे दूर भव्य में मोक्ष गमन में अनेक बाधाएँ रहती है वैसे ही इस भोगसम्पदा में अनेक बाधाएँ रहती हैं।''

''तीनों लोकों के भूषण और जगत् के स्वामी जिनदेव गले में मोतियों की माला पहने हैं मानों मुक्ति की दूती के समान परमशुक्ल लेश्या ने उस मुक्तामाला के ब्याज से भगवान् के कण्ठ को सुशोभित किया है। दोनों कानों के कुण्डलों से भगवान् का स्निग्ध गण्डस्थल शोभित है, मानों दोनों कुण्डल यह दिखला रहे हैं कि विरागों के भी मुख को रागयुक्त ( लाल ) करने में हमारा चातुर्य लोग देखें। दोनों हाथों में दो गोल कड़े हैं। वे गोल कड़े मानों यह विचार कर ही आये हैं कि भगवान् को वृत्त प्रिय है। वृत्त का अर्थ चारित्र भी है और गोल भी। सिर पर रत्नमयी मुकुट शोभित है। रत्नों ने सोचा- इन्हें रत्नों ( रत्नत्रय ) का बड़ा अभिमान है जरा इनके साथ रहकर देखें तो।''

''जिनका ज्ञान दर्शन चारित्र शुद्ध होता है वे शुद्ध ज्ञान दर्शन चारित्र वाले कहे जाते हैं। जैसे उत्कृष्ट शुक्ल गुण के सम्बन्ध से वस्त्र आदि 'शुक्लतम' अत्यन्त सफेद कहे जाते हैं।''

''जैसे वस्त्रादि से बनी पताका जय को प्रकट करती है वैसे ही यह आराधना भी संसार से निर्मुक्ति को प्रकट करती है। भक्त प्रत्याख्यान उस पताका को ग्रहण करने रूप है।''

''जैसे बुझता हुआ दीपक तीव्र प्रकाश देता है। किन्तु मन्द-मन्द जलकर बुझ जाता है और धीरे-धीरे अन्धकार से ढक जाता है। उसी तरह मन्द होता हुआ शुभ परिणाम भी अशुभ परिणामों की परम्परा का जनक होता है और उससे कर्मों की स्थिति और अनुभाग उत्तरोत्तर बढ़ता है। इसके विपरीत सम्यग्ज्ञान रूपी वायु से प्रेरित शुभ परिणाम रूप आग बढ़ती-बढ़ती कर्म रूपी वृक्षके रस को सुखाकर उसे जड़ से नष्ट कर देती है।''

जैसे योग्य शिक्षा को प्राप्त अश्व चिरकाल तक दुःख से भावित हुआ, अर्थात् कष्ट सहने का अभ्यासी युद्धभूमि में सवारी में ले जाने पर कार्य करता है। उसी प्रकार पूर्व में तप करने वाला विषय सुख से विमुख जीव मरते समय समाधि का इच्छुक हुआ निश्चय से परीषह को सहने वाला होता है।

‘‘जैसे विद्वान् मित्र दुर्लभ हैं वैसे ही प्राणियों को उपशमलब्धि, काललब्धि और करणलब्धि दुर्लभ हैं। ’’

‘‘अनेक प्रकार की युद्ध सम्बन्धी भावना से जैसे योद्धा युद्ध में ही मोहित होता अर्थात् युद्ध से नहीं डरता। वैसे ही मुनि भी सत्त्वभावना से उपसर्ग आने पर मोहित नहीं होता।’’

''नीच जनकी संगति की तरह कषाय हृदय को जलाती है। अशुभ आंगोंपाग नामकर्म के उदय से जो मुख विरूप होता है वैसे ही कषाय के उदय में मनुष्य का मुख क्रोध से विरूप हो जाता है। जैसे धूल पड़ने से आँख लाल हो जाती है उसी तरह क्रोध से आँख लाल हो जाती है। जैसे महावायु से शरीर काँपने लगता है वैसे ही क्रोध से मनुष्य काँपने लगता है। जैसे शराबी शराब पीकर जो चाहे बकता है वैसे ही क्रोध में मनुष्य जो चाहे बोल देता है। जैसे जिस पर भूत का प्रकोप होता है वह कुछ भी करता है वैसे ही क्रोधी मनुष्य जो चाहे करता है।''

''कषाय समीचीन ज्ञानरूपी दृष्टि को मलिन कर देती है। सम्यग्दर्शनरूपी वन को उजाड़ देती है। चारित्र रूपी सरोवर को सुखा देती है। तपरूपी पत्रों को जला देती है। अशुभकर्मरूपी बेल की जड़ जमा देती है। शुभकर्म के फल को रसहीन कर देती है। अच्छे मन को मलिन करती है। हृदय को कठोर बनाती है। प्राणियों का घात करती है। वाणी को असत्य की ओर ले जाती है। महान् गुणों का भी निरादर करती है। यशरूपी धन को नष्ट करती है। दूसरों को दोष लगाती है। महापुरुषों के भी गुणों को ढाँकती है, मित्रता की जड़ खोदती है। किये हुए भी उपकार को भुलाती है। महान् नरक में गिराती है। दुःखों के भँवर में फँसाती है। इस प्रकार कषाय अनेक अनर्थ करती है।''

''बड़े जोर से चलने वाली हवा की तरह मन उसी की तरह चहुँओर अस्थिर रूप से दौड़ता है। और परमाणु द्रव्य की तरह मन दूरवर्ती भी वस्तु के पास शीघ्र जाता है। मन अन्धे बहरे और गूँगे के समान है शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।''

''बिलाव के शब्द के समान आचरण मत करना। विलाव का शब्द पहले जोर का होता है फिर क्रम से मन्द हो जाता है उसी तरह रत्नत्रय की भावना को पहले बड़े उत्साह से करने पीछे धीरे-धीरे मन्द मत करना।''

‘‘जैसे अयोग्य आचरण करने वाली अपनी बहन में जिनकल्प को धारण करने वाला नागदत्त नामक मुनि एकत्व भावना से मोह को प्राप्त नहीं हुआ। वैसे ही क्षपक भी मोह को प्राप्त नहीं होता।’’

‘‘ये कषायें तीन लोक में मल्ल के समान हैं। कुल और शील के शत्रु हैं। वे ऐसे मल्ल हैं जिनको दूर करना सबसे कठिन है।’’

''जैसे शत्रुओं और मित्रों की प्रतिकृति देखने से द्वेष और राग उत्पन्न होता है। यद्यपि वे प्रतिकृतियाँ कोई अपकार या उपकार नहीं करतीं, तथापि उन शत्रुओं और मित्रों ने जो अपकार या उपकार किये होते हैं उनके स्मरण में उनकी प्रतिकृतियाँ निमित्त होती हैं। उसी तरह यद्यपि प्रतिबिम्बों में जिन और सिद्धों के गुण अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, सम्यक्त्व वीतरागता आदि नहीं होते, तथापि उनके समान होने से उनके गुणों का स्मरण कराती हैं। और वह गुणों का स्मरण जो अनुरागात्मक होता है, ज्ञान और दर्शन में लगाता हैं। और वे ज्ञान और दर्शन महान् संवर और निर्जरा करते हैं। इसलिए प्रतिदिन चैत्य भक्ति करना चाहिए।''

''जब तक मृत्यु नहीं आती तब तक तप में उद्योग करना चाहिए। मृत्यु का कोई देश नियत नहीं है। जैसे गाड़ी आदि स्थल पर ही चलती है। ज्योतिषी देव आकाश में ही चलते हैं, मीन, मगर आदि पानी में ही चलते हैं। किन्तु यह सबसे अधिक दुःखदायी मृत्यु जल, थल और आकाश में विहार करती है। ऐसे देश हैं जहाँ आग, चन्द्रमा, इन्द्र, वायु, शीत, उष्ण अथवा बर्फ का प्रवेश नहीं है। किन्तु ऐसा कोई देश नहीं जहाँ मृत्यु का प्रवेश नहीं है। जैसे रोगों का निदान वात पित्त कफ ही है। किन्तु मृत्यु का निदान तो सब ही है। वात, पित्त, कफ, शीत, उष्ण, वर्षा, हिम, आतप इन सबका प्रतीकार करने की विधि है। किन्तु संसार में मृत्यु का कोई इलाज नहीं है। शीतॠतु, ग्रीष्मॠतु, वर्षाॠतु आदि का काल तो ज्ञात है किन्तु मृत्यु का काल ज्ञात नहीं है। जैसे चन्द्रमा राहु के मुख में प्रवेश करके उससे दूर जाता है उस तरह मृत्यु के मुख में प्रवेश करके निकलना सम्भव नहीं है। मृत्यु न भी आये और जीवन बना रहे तब भी कुरोगरूपी वज्रपात का महाभय रहता है। जैसे आकाश से अचानक वज्रपात होता है वैसे ही अचानक रोग का आक्रमण होता है। आयु, बल और रूपादि गुण तभी तक हैं जब तक शरीर में रोग नहीं होता। तन्तु से लगा फल तभी तक नहीं गिरता जब तक वायु का झोंका नहीं आता। शरीर के रोग से पीड़ित होने परे सुखपूर्वक आत्मकल्याण नहीं किया जा सकता। जैसे घर के चारों ओर से जलने पर प्रतीकार सम्भव नहीं होता। अथवा रोगों के नहीं होने पर रागरूपी शत्रु मित्र के रूप में शत्रु की तरह बढ़कर जब मनुष्य के चित्त को पीड़ा देता है तब समभाव कठिन होता है।''

''जैसे पित्त के शान्त होने पर चित्त काम में लगता है वैसे ही कर्म का उपशम होने पर प्रशमभाव को प्राप्ति होती है, उसी समय आत्मकल्याण करने की शक्ति आती है।''

''मुनि यद्यपि स्वयं स्थिर चित्तवाला हो फिर भी उसके संसर्ग से चित्त में उल्लास पाकर आर्य का मन उसी प्रकार द्रवित होता है जैसे आग के समीप में घी द्रवित होता है।''

''यदि सुगन्ध अथवा दुर्गन्ध के संसर्ग से मिट्टी भी सुगन्धित अथवा दुर्गंन्धयुक्त हो जाती है तो ससंर्ग से पुरुष पार्श्वस्थ आदि के गुणों से तन्मय क्यों न होगा ?

जो जिस प्रकार की वस्तु से मैत्री करता है वह वैसा ही हो जाता है। स्वर्ण आदि के संसर्ग से लोहे की छुरी भी उसी रूप हो जाती है।

दुष्टजन के संसर्ग से सज्जन भी अपना गुण छोड़ देता है। जैसे आग के सम्बन्ध से जल अपने शीतल स्वभाव को छोड़ देता है। आग के सम्बन्ध से जल की तरह साधु भी अपना गुण छोड़ देता है।''

''दुर्जनों की गोष्ठी के दोष से सज्जन भी अपना बड़प्पन खो देता है। फूलों की कीमती माला भी मुर्दे पर डालने से अपना मूल्य खो देती है।

दुर्जन के संसर्ग से लोग संयमी के भी सदोष होने की शंका करते हैं। जैसे मद्यालय में बैठकर दूध पीने वाले ब्राह्मण के भी मद्यपायी होने की शंका करते हैं।''

''महान् संयमी भी दुर्जन के द्वारा किए गये दोष से अनर्थ का भागी होता है। जैसे उल्लू के द्वारा किए गये दोष के लिए निर्दोष हंस भी मारा गया।

सज्जनों की संगति के गुण से दुर्जन अपना दोष भी छोड़ देता है। जैसे सुमेरु पर्वत का आश्रय लेने पर कौवा अपनी असुन्दर छवि को छोड़ देता है। इसका भाव यह है कि सज्जनों की सत्संगति से विद्यमान भी दोष नष्ट हो जाते हैं अतः सज्जनों का आश्रय लेना चाहिए।''

''जैसे सुगन्ध से रहित भी फूल 'यह देवता का आशीर्वाद है' ऐसा मानकर सिर पर धारण किया जाता है उसी प्रकार सज्जनों के मध्य में रहने वाला दुर्जन भी पूजित होता है।

जो मनुष्य पहले से ही संसार से विरक्त है वह विरागियों के मध्य में रहकर और भी अधिक विरागी हो जाता है। जैसे बनावटी गन्ध के युक्त द्रव्य स्वभाव से ही सुगन्धित द्रव्य की गन्ध के संसर्ग से और भी अधिक सुगन्धित हो जाता है।''

''अपने गण के वासी साधु को हितकारी किन्तु हृदय को अनिष्ट भी लगने वाले वचन बोलना चाहिए, क्योंकि वे वचन कडुवी औषधी का तरह उसके लिए मधुर फलदायक होते है।''

''अपने ही भरण-पोषण में लगे रहने वाले क्षुद्रजन तो हजारों हैं किन्तु परोपकार ही जिसका स्वार्थ है ऐसा पुरुष सज्जनों में अग्रणी विरल ही होता है। बड़वानल अपना कभी न भरने वाला पेट भरने के लिए समुद्र का जल पीता है। किन्तु मेघ ग्रीष्म से संतप्त जगत् के सन्ताप को दूर करने के लिए समुद्र का जल पीता है।''

''जैसे मनुष्य के कफ में फँसी हुई मक्खी उससे अपने को छुड़ाने में असमर्थ होती है। वैसे ही आर्य का अनुगामी साधु उससे अपने को छुड़ाने में असमर्थ होता है।''

''हृदय को अनिष्ट भी वचन गुरु के द्वारा कहे जाने पर मनुष्य को पथ्य रूप से ग्रहण करना चाहिए। जैसे बच्चे को जबरदस्ती मुँह खोलकर पिलाया गया घी हितकारी होता है उसी तरह वह वचन भी हितकारी होता है।''

''जो पुरुष अपने गुणों की प्रशंसा स्वयं नहीं करता उसके विद्यमान गुण नष्ट नहीं होते। यदि वह अपने गुणों की प्रशंसा नहीं करता तो उसके गुणों की प्रख्याति नहीं होती, ऐसी बात नहीं है। सूर्य अपने गुणों को स्वयं नहीं कहता, फिर भी उसका प्रताप जगत् में प्रसिद्ध है।''

''सम्यग्ज्ञानदर्शन आदि गुणों का अभाव होने से वह गुण रहित हैं किन्तु अपनी प्रशंसा न करने के गुण से गुणवान् है। यदि उसमें गुण हैं तो वे स्वयं कसौटी पर कसे जायेंगे। कस्तूरी की गन्ध के लिए शपथ करना नहीं होता।''

**“जो परकी निन्दा करके अपने को गुणी कहलाने की इच्छा करता है वह दूसरे के द्वारा कडुवी औषधी पीने पर अपनी नीरोगता चाहता है, अर्थात् जैसे दूसरे के औषधी पीने पर नीरोग नहीं हो सकता, वैसे ही दूसरे की निन्दा करके कोई स्वयं गुणी नहीं बन सकता।”**

''अपने यश को नष्ट मत करो क्योंकि समीचीन गुणों के कारण फैला हुआ भी आपका यश अपनी प्रशंसा करने से नष्ट होता है। जो अपनी प्रशंसा करता है वह सज्जनों के मध्य में तृण की तरह लघु होता है।''

''मेरे में ये गुण हैं ऐसा कहने वाले में विद्यमान भी गुण उसी प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे काँजी के पीने से मदिरा का नशा नष्ट हो जाता है।''

''दूसरे का छोटा सा भी गुण सत्पुरुष को पाकर अतिमहान् हो जाता है। जैसे तेल की बूँद पानी में फैलकर महान् हो जाती है।''

''जैसे धान के छिलके को दूर करना उसके अभ्यन्तर मल को दूर करने का उपाय है। बिना छिलके का धान्य नियम से शुद्ध होता है। किन्तु जिस पर छिलका लगा है उसकी शुद्धि नियम से नहीं होती। इसी प्रकार जो अचेल (दिगम्बर) है उसकी अभ्यन्तर शुद्धि नियम से होती है।''

''जैसे घोड़े के अन्धे होने पर अनजान वैद्यपुत्र ने अपने पिता के अभाव में उस पर सब दवाइयों का प्रयोग किया तो घोड़ा ठीक हो गया, इसी तरह अपने दोषों से अनजान साधु भी प्रतिक्रमण से शुद्ध होता है।''

''जैसे छोटे से बाँस को छेदना शक्य है। किन्तु बाँसों के झाड़ में से खींचकर निकालना बहुत कठिन है। इसी तरह संयमी का भी मन विषयों से हटाना अल्प ज्ञानी गुरु के लिए कठिन है।''

''जैसे दु:ख और मरण हमें अप्रिय हैं उस तरह सभी जीवों को अप्रिय हैं। अहिंसा उत्तम है किन्तु हम लोग हिंसा आदि को त्यागने में असमर्थ हैं।''

''जैसे गंगा आदि महा नदियों के द्वारा रात दिन जल आने पर भी सागर को तृप्ति नहीं होती, इसी तरह धन से भी जीवों को सन्तोष नहीं होता।''

''मनुष्य जन्म वैसे ही दुर्लभ है जैसे साधु के मुख में कठोर वचन,सूर्यमण्डल में अन्धकार, प्रचण्ड क्रोधी में दया,लोभी में सत्यवचन,मानी में दूसरे के गुणों का स्तवन, स्त्री में सरलता, दुर्जनों में उपकार की स्वीकृति,आप्ताभासों के मतों में वस्तु तत्त्व का ज्ञान दुर्लभ है। देश, कुल, रूप, आरोग्य, आयु, बुद्धि, ग्रहण, श्रवण और संयम ये लोक में उत्तरोत्तर दुर्लभ है।''

''जैसे आकाश से अचानक वज्रपात होता है वैसे रोग अचानक आकर शरीर का पात करता है। बल, आयु, रूपादि गुण तभी तक हैं जब तक शरीर में रोग नहीं होता। पेड़ की डाल में लगा फल तभी तक नहीं गिरता जब तक हवा नहीं चलती।''

''जैसे सूर्यमण्डल के मेघ की घटा से ढक जाने पर हल्की छाया रहती है वैसे ही ज्ञान शक्ति के ज्ञानावरण से ढक जाने पर साधारण ज्ञान रहता है।''

''जैसे वर्षा के होने से ही मनुष्य को लाभ नहीं है किन्तु जमीन में बीज बोने पर लाभ है। उसी तरह यतिजन के समागम का लाभ उनसे हित की बात सुनने एवं अपनाने से है।''

''जो मोक्षमार्ग के उपदेशक साधुओं के निवास स्थान पर जाकर भी प्रमादवश वहाँ लोगों की बातचीत सुनता हुआ बैठता है वह तालाब पर जाकर भी कीचड़ में ही फँस जाता है।''

''समीचीन ज्ञानपूर्वक धर्म होता है। क्षमा, मार्दव, आर्जव, सन्तोष उसके गुण हैं। नरक के मार्ग के लिए वज्र की सांकल रूप है। तिर्यञ्चगतिरूपी बेल के लिए कुठार है। दुःखरूप पर्वतों के शिखरों के लिए कठोर वज्र है। मोहरूपी महावृक्ष को उखाड़ने में चतुर प्रचण्ड वायु है। जरारूपी जंगल की आग की लपेटों को शान्त करने के लिए वर्षाकालीन मेघ है। मृत्युरूपी हरिण का वध करने के लिए प्रचण्ड बाघ है। क्रूर रोगरूपी सर्पों के लिए गरुड है। सम्पतिरूपी गंगा की उत्पत्ति के लिए हिमवान पर्वत है। गम्भीर शोक रूपी कीचड़ से पार उतरने के लिए पुल है। सौभाग्य का पिता है। ऐश्वर्य रूपी रत्नों की खान है, कुयोनिरूपी वन में भटकते हुए लोगों के लिए विशाल मोक्ष नगर है।''

''जैसे बाँस का झुण्ड धरती में गाढ रूप से बृहद् रहता है उसमें से छोटा बाँस तो खींचा जा सकता है। किन्तु पीछे उसको अलग करना बहुत कठिन है। उसी तरह संयमी का भी मन रूपादिविषयों में फँसने पर निकालना कठिन होता है अर्थात् रागद्वेष से हटाना अशक्य होता है।''

''जैसे वन में एक अत्यन्त डरा हुआ बेचारा हरिण सब ओर से त्रस्त हुआ रहता है वैसी ही दशा जीव की संसार में है। अनन्तभवों में एक प्राणी के द्वारा प्राप्त सुख की जब यह स्थिति है तो उसका विचार करने पर एक जन्म में जो सुख प्राप्त होता है वह कितना होगा। अत्यन्त अल्प भी यह सुख दुःख के समुद्र में गिरकर दुःखरूप ही हो जाता हैं। जैसे मीठा मेघों का पानी भी लवण समुद्र के जल में पड़कर खारा हो जाता है।''

''जैसे रोग से पीड़ित रोगी औषधि का सेवन करता है। पित्त के प्रकोप से शरीर के जलने पर जो शीत पदार्थों के सेवन को भोग मानता है वही अज्ञानी अन्न आदि को भोग नाम से कहता है। किन्तु इस लोक में जल आदि पदार्थ एकान्त से सुख देने वाले नहीं हैं अतः उनको दुःख का प्रतीकार करनेवाला ही कहना चाहिए, भोग नाम से नहीं कहना चाहिए। जो अन्न भूख से पीड़ित को सुख देता है वही अन्न पेट भरे व्यक्ति को विष के समान लगता है।''

''जैसे सन्ध्याकालीन मेघों का रंग अस्थिर होता है वैसे ही स्त्रियों का अनुराग भी अस्थिर होता है।''

''यह शरीर अपवित्रता की खान है, आत्मा के लिए बड़ा भाररूप है। इसमें कुछ भी सार नहीं है इसके साथ अनेक संकट लगे हैं। व्याधिरूपी धान के लिए यह खेत है। जरारूपी डाकिनी के लिए श्मसान है।''

**‘‘जैसे सर्पों से भरे जंगल में विद्या मंत्र आदि से रहित पुरुष दृढ़ प्रयत्न-खूब सावधान रहता है उसी प्रकार जो अचेल होता है वह भी इन्द्रियों को वश में करने का पूरा प्रयत्न करता है।’’**

**‘‘जैसे अनिपुण वैद्य व्याधि की चिकित्सा नहीं करता, वैसे ही प्रायश्चित्त को न जानने वाला आचार्य रत्नत्रय की विशुद्धि के इच्छुक को शुद्ध नहीं करता।’’**

"जैसे शरीर में लगे बाण, काँटा आदि द्रव्यशल्य को न निकालने पर मनुष्य कष्ट से पीड़ित होता है। उसी प्रकार भावशल्य से युक्त भिक्षु भी तीव्र दुखित होता है और भय से करता है कि शल्य को दूर न करने पर मैं किस गति में जाऊँगा।"

''जैसे पैर में काँटा घुसने पर पहले पैर में छिद्र होता है फिर उसमें माँस का अंकुर उग आता है, और वह नाडी तक पहुँचता है। पीछे उस पैर में साँप की बाँबी जैसे दुर्गन्ध युक्त छिद्र हो जाते हैं। इसी प्रकार लज्जा भय और गारव से प्रतिबद्ध थोड़ा-सा भी भावशल्य यदि दूर न किया जाये तो व्रत शील और गुणों को नष्ट करता है।''

**‘‘जैसे सिंह सियार के पेट में गये मांस को भी उगलवाता है वैसे ही अवपीडक आचार्य उस क्षपक के अन्तर में छिपे हुए माया शल्य दोषों को बाहर निकालतें हैं।’’**

''जैसे बालक के हित की चिन्ता में तत्पर माता चिल्लाते हुए भी बालक को पकड़कर उसका मुँह फाड़कर घी पिलाती है। उसी प्रकार आचार्य भी कुटिल क्षपक के मायाशल्य रूप दोष को निकालते हैं। और वह कडुवी औषधि की तरह पीछे उस क्षपक के लिए हितकारी होता है।''

''जैसे तपाये हुए लोहे के द्वारा पिया गया जल बाहर नहीं जाता वैसे ही जिस आचार्य से कहे गए दोष अन्य मुनियों पर प्रकट नहीं होते, वह आचार्य अपरिस्राव गुण से युक्त होता है।''

''आचार्य श्रुत भेदों के लिए रत्न रखने के पिटारे के समान हैं अर्थात् जैसे पिटारे में रत्न सुरक्षित रहते हैं वैसे ही वह श्रुतरूपी रत्नों का अभ्यास करके उन्हें अपने हृदय में धारण करता है।''

''जैसे नौका चलाने का अभ्यासी बुद्धिमान् नाविक तरंगों से क्षुभित समुद्र में रत्नों से भरे जहाज को धारण करता है। वैसे ही निर्यापक आचार्य संयम और गुणों से पूर्ण, किन्तु परीषह रूप लहरों से चंचल और तिरछे हुए क्षपकरूप जहाज को मधुर और हितकारी उपदेशों से धारण करता है उसका संरक्षण करता है।''

''जैसे अत्यन्त निपुण भी वैद्य रोगी होने पर अपना रोग दूसरे वैद्य से कहता है और उस वैद्य की चिकित्सा सुनकर वह रोगी वैद्य उसके कहे अनुसार इलाज प्रारम्भ करता है। इसी प्रकार सम्पूर्ण प्रायश्चित्त विधि को जानते हुए भी मुनि को अपनी उत्कृष्ट विशुद्धि के लिए पर की साक्षीपूर्वक शुद्धि करना चाहिए। क्योंकि अपनी और दूसरे की साक्षीपूर्वक विशुद्धि उत्कृष्ट मानी जाती है।''

''जैसे कण्टक से विधा हुआ व्यक्ति का सर्वशरीर पीड़ा से पीड़ित होता है और उस कण्टक के निकल जाने पर वह दुःखी मनुष्य शल्य से रहित हो सुखी होता है। उसी प्रकार जो काँटे की तरह दोष को नहीं निकालता वह मायावी अपने अपराधको न कहने रूप दोष से दुःखी रहता है और वही दोष को प्रकट करने पर विशुद्ध होकर सुखी होता है।''

"जैसे बालक बोलते हुए कार्य हो या अकार्य हो, सरलभाव से ही कहता है कुछ छिपाता नहीं है। वैसे ही साधु को भी मनोगत कुटिलता और वचनगत झूठ का त्याग कर अपना अपराध कहना चाहिए।"

''जो शब्दादि विषयों के वश में नहीं है उसे जीतने वाला कहते हैं। जैसे जो स्त्री पुरुष की अनुगामिनी नहीं होती उसके सम्बन्ध में कहा जाता है कि इसने पुरुष को जीत लिया।''

''पूरब दिशा अन्धकार को दूर करने में तत्पर सूर्य के उदय की दिशा है, इसलिए अपने उदय का इच्छुक व्यक्ति उसी की तरह हमारे कार्य का अभ्युदय हो इसलिए पूरब की ओर मुख करता है।''

''विदेह क्षेत्र उत्तर दिशा में है। अतः विदेह क्षेत्र में स्थित स्वयंप्रभ आदि तीर्थंकरों को चित्त में स्थापित करके उनके अभिमुख होने से कार्य की सिद्धि होती है इस भावना से उत्तर दिशा की ओर मुख करते हैं।''

''उपमान उपमेय और उन दोषों में पाये जाने वाले साधारण धर्म को लेकर सर्वत्र उपमान उपमेय व्यवहार होता है। जैसे 'चन्द्रमुखी कन्या' आदि में चन्द्र उपमान है मुख उपमेय है। और गोलपना तथा सब लोगों के मन को प्रिय होना दोनों का साधारण धर्म है।''

"किंपाक वृक्ष का फल नेत्रों को अत्यन्त प्रिय रूपवाला होता है। मधुर रस से युक्त होता है और नाक को सुखदायक होता है। परन्तु सेवन करने पर दुःखकारी होता है उसे खाने से मृत्यु हो जाती है। अतः सेवन करने के पश्चात् निश्चय से कटुक होता है। यह आलोचना शुद्धि भी उसी के समान है। यहाँ किंपाक फल का सेवन उपमान है। आलोचना उपमेय है। परिणाम में दुःख होना दोनों का साधारण धर्म है।"

''जैसे कोई जीने का अभिलाषी पुरुष विष खरीद कर पीता है वह अहित करके विषपान को हित मानता है। वैसा ही यह माया शल्य को निकालकर शुद्धि का अभिलाषी साधु है।''

''लाख के रंग में रंगे वस्त्र की शुद्धि बहुत प्रयत्न करने पर भी नहीं होती। उसी तरह मायाशल्य युक्त आलोचना से भी शुद्धि नहीं होती।''

''जैसे सुख का इच्छुक पुरुष अपथ्य भोजन को अपनी बुद्धि से गुणकारी मानकर खाता है तथापि भोजन करने के पश्चात् उसका परिपाक दुःखदायी होता है। उसी के समान यह अनुमानित दोष सहित शल्य को दूर करके शुद्धि करने वाला है।''

"मायाशल्य के दूर करने के लिए साधु आलोचना करता हुआ भी अन्य माया से अपने को आच्छादित करता है। जैसे गड्डा बनाने के लिए उसमें से रेत निकाली जाती है किन्तु उसमें और रेत भर जाती है।"

"जैसे काँसे का बना भृंगार अन्दर से नीला और मलिन होता है तथा बाहर से स्वच्छ होता है वैसे ही आलोचना शुद्धि मायाशल्य दोष से युक्त होती है।"

''जैसे सोने के रस के लेप से लोहे का कड़ा बाहर से पीला दिखाई देता है अथवा जैसे सोने के पतले पत्र से ढका लोहे का कड़ा अन्दर से निःसार होता है अथवा लाख से भरा कड़ा जैसा होता है उन्हीं के समान यह आलोचना शुद्धि है। यहाँ तीन दृष्टान्तों के द्वारा सूक्ष्म दोष की आलोचना की निन्दा की गई है। जैसे सोने के रस से लिप्त कड़ा ऊपर से पीला होता है उसी प्रकार अल्प शुद्धि होती है यह प्रथम दृष्टान्त का भाव है। गुरुतर पाप को ढाँकने मात्र को प्रकट करने के लिए दूसरा दृष्टान्त है। भारी लोहा वगैरह वस्तु निस्सार होती है, बाहर में उसे सोने के पत्र से जैसे ढाक देते हैं उसी प्रकार वह सूक्ष्म अपराधों को कहता है। ऐसा वह यह विश्वास उत्पन्न करने के लिए करता है कि गुरु समझें कि यह मुनि पाप से इतना भयभीत है कि सूक्ष्म पाप को भी नहीं छिपाता तब बड़ा पाप कैसे कर सकता है ? तीसरे दृष्टान्त के द्वारा इस प्रकार की शुद्धि से अन्तःसार रहित कहा है।''

''जो अपने दोषों को न कहकर गुरु से शुद्धि चाहता है वह मरीचिका से जल और चन्द्र के परिवेश से भोजन प्राप्त करना चाहता है। अर्थात् जैसे मरीचिका से जल और चन्द्र के परिवेश से भोजन नहीं प्राप्त होता उसी तरह अपने दोषों को कहे बिना शुद्धि नहीं होती।''

''जैसे रहट में लगी हुई पानी भरने की घटिकाएँ, भरकर भी रीति होती जाती हैं उसी प्रकार अशुद्ध आलोचना करनेवाला मुनि है। वह अपने मुख से अपराध प्रकट करने के लिए प्रवृत्त हुआ भी अप्रवृत्त ही है क्योंकि गुरु ने उसे नहीं सुना। अथवा वह मन्थन चर्मपालिका के समान है। जैसे मथानी डोरी से छूटते हुए भी डोरी से बँधती जाती है उसी प्रकार उसकी आलोचना वाणी मुखरूपी गर्त से छूटकर भी मायाशल्य से सहित होने से कर्म से बद्ध करती है। अथवा फूटे घट के समान है। जैसे फूटा घड़ा घट का कार्य जलधारण अथवा जल आदि का लाना करने में असमर्थ होता है, उसी प्रकार शब्दाकुलित यह आलोचना निर्जरारूप कार्य को नहीं करती।''

''जैसे नकली सोने को धन समझकर ग्रहण करे तो पीछे से वह निश्चय ही अहित-कर होता है क्योंकि उससे यदि कुछ इच्छित वस्तु खरीदना चाहें तो नहीं खरीद सकते। इसी प्रकार बालमुनि के सन्मुख की गई आलोचना भी अनुरूप प्रायश्चित्त की प्राप्ति का उपाय न होने से नकली सोने के ही समान अहितकारी है।''

''जैसे दुर्जन से की गई मित्रता हितकर नहीं होती, दुःखदायक होती है उसी प्रकार प्राणिसंयम और इन्द्रिय संयम से रहित बालमुनि के सन्मुख की गई आलोचना भी प्रायश्चित्त का लाभ न होने से अनेक अनर्थों को लाने वाली है।''

"निर्मल जल वस्त्र में लगे कीचड़ को दूर करता है। किन्तु रुधिर से लिप्त वस्त्र को रुधिर शुद्ध नहीं कर सकता। इसी प्रकार अशुद्ध रत्नत्रयवाले मुनि से की गई अशुद्ध आलोचना से अतीचार सम्बन्धी अशुद्धि दूर नहीं होती।"

"जैसे जिन भगवान् के वचनों का लोप करने वाले और दुष्कर पाप करने वालों का मुक्तिगमन अति दुष्कर है उसी प्रकार पार्श्वस्थ मुनि से दोषों को कहने वालों की शुद्धि अति दुष्कर है।"

''वैद्य रोगी से तीन बार पूछता है- तुमने क्या खाया था, क्या किया था, रोग की क्या दशा है ? शरीर में लगे घाव की भी तीन बार परीक्षा की जाती है अथवा चोरी होने पर तीन बार पूछा जाता है अथवा मालाकार से भी तीन बार पूछा जाता है कि तेरी माला का क्या मूल्य है। राजा ने जिसे कार्य करने की आज्ञा दी है वह तीन बार पूछता है कि क्या इस प्रकार करूँ ? इसी प्रकार आलोचना की परीक्षा भी तीन बार की जाती है। अपना अपराध पुनः कहो ? ये सरल और वक्र आलोचना के सम्बन्ध में पाँच दृष्टान्त है। यदि तीनों बार भी एकरूप से ही कहता है तो सरल आलोचना है। यदि अन्य अन्य रूप से कहता है तो वक्र आलोचना है ऐसा समझना चाहिए।''

"असंयम आदि करनेवाला भी मनुष्य गुरु के समीप आलोचना और निन्दा करके शीघ्र ही हल्का हो जाता है जैसे बोझ को उतारने पर बोझा ढोने वाला हलका हो जाता है।"

"असंयम सेवन करते समय जैसे तीव्र अशुभ परिणाम से तीव्र पाप बन्ध और मन्द अशुभ परिणाम से मन्द पापबन्ध हुआ था वैसे ही आलोचना के पश्चात् तीव्र शुभ परिणाम होने से पाप की तीव्र हानि और मन्द शुभ परिणाम होने से पाप की मन्द हानि होती है।"

"जैसे समस्त आयुर्वेद का ज्ञाता और चिकित्सा में निपुण बुद्धि वाला वैद्य महती अथवा अल्प व्याधि से पीड़ित रोगी को नीरोग करता है। उसी प्रकार प्रवचन के सारभूत श्रुत का पारगामी और प्रायश्चित्त के क्रम का ज्ञाता आचार्य चारित्र की शुद्धि के द्वारा क्षपक को विशुद्ध करता है।"

''जैसे सुवर्णकार आग का बलाबल जानकर तदनुसार उसे धौंकनी से धौंकता है। उसी प्रकार आचार्य भी शिष्य का अपराध थोड़ा या बहुत है यह जानकर प्रायश्चित्त देते हैं।''

''क्षपक की स्थिति उस नट के समान है जो सिरपर बोझ उठाये बाँस के अग्रभाग पर अपनी कला का प्रदर्शन करता है अतः परिचारक ऐसा ही प्रयत्न करते हैं जिससे वह सफल हो।''

''जैसे रज अर्थात् धूल शरीर आदि के सौन्दर्य को ढाँक देती है और शरीर में दाद खाज आदि दोष उत्पन्न करती है वैसे ही कर्म जीव के ज्ञानादि गुणों को ढाँकता है और अनेक कष्ट देता है इसलिए उसे रज के समान होने से रज कहा है।''

''सूर्य की किरणें पृथ्वी की ऊष्मा से मिलकर जल का भ्रम उत्पन्न करती हैं उसे मृगतृष्णा कहते हैं। जैसे प्यास से पीड़ित मृग उसे पानी जानते हैं वैसे–ही मनुष्य भी दर्शनमोह के कारण अतत्त्व को भी तत्त्व जानता है।''

''मिथ्यात्व के उदय से उत्पन्न हुए मोह से धतूरे के सेवन से उत्पन्न हुआ मोह ( मूर्छा ) उत्तम है; क्योंकि दर्शन मोह से उत्पन्न हुआ मोह नाना योनियों में जन्ममरण को बढ़ाता है किन्तु धतूरे के सेवन से उत्पन्न हुआ मोह जन्ममरण की परम्परा को नहीं बढ़ाता।''

**"अनन्त काल में अच्छी तरह भाया गया मिथ्यात्व बड़े कष्ट से छूटता है। जैसे सर्प रोकने पर भी अपने चिर परिचित बिल में बलपूर्वक घुस जाता है। अतः सम्यक्त्व में दृढ़ता कर्तव्य है।"**

**"आग,विष,कालासर्प आदि जीव का उतना दोष नहीं करते जैसा महादोष तीव्र मिथ्यात्व करता है। मिथ्यात्व नामक शल्य से बींधे गये जीव तीव्र वेदना भोगते हैं। जैसे विषैले बाण से छेदे गये मनुष्यों का कोई प्रतीकार नहीं होता अर्थात् वे अवश्य मर जाते हैं।"**

''जैसे अशुद्ध कड़ुवी तूम्बी में रखा दूध कटुक ही होता है और शुद्ध तूम्बी में रखा दूध मीठा तथा सुगन्धित होता है। वैसे ही मिथ्यात्व से दूषित जीव में तप, ज्ञान, चारित्र, वीर्य, ये सब नष्ट हो जाते हैं क्योंकि सम्यक् रूप नहीं होते। समीचीन तप, ज्ञान, चारित्र और वीर्य मुक्ति के उपाय हैं, केवल तप आदि मात्र मुक्ति का उपाय नहीं हैं।''

''जैसे नगर में प्रवेश करने का उपाय उसका द्वार होता है वैसे ही ज्ञान, चारित्र, वीर्य और तप का द्वार सम्यक्त्व है। यदि जीव सम्यक्त्व रूप से परिणत होता है तो वह ज्ञानादि में प्रवेश कर सकता है। सम्यक्त्व के बिना ज्ञानादि में प्रवेश सम्भव नहीं है। सम्यक्त्व के बिना जीव सातिशय अवधि ज्ञान आदि,यथाख्यात चारित्र अथवा बहुत निर्जरा में निमित्त तप को प्राप्त नहीं कर सकता। तथा जैसे नेत्र मुख को शोभा प्रदान करते हैं वैसे ही सम्यक्त्व से ज्ञानादि शोभित होते हैं। तथा जैसे जड़ वृक्ष की स्थिति में कारण है वैसे ही सम्यक्त्व ज्ञानादि की स्थिति में निमित्त है।''

''ऊसर भूमि में कौन धान बोता है,क्योंकि उसका कोई फल नहीं है। उसी प्रकार अर्हन्त आदि में भक्ति रहित अर्थात् मिथ्यादृष्टि होते हुए कठिन संयम का आचरण करे तो वह निष्फल है।''

''आराधना के नायकों की भक्ति न करके जो आराधना अर्थात् रत्नत्रय की सिद्धि चाहता है वह बीज के बिना धान्य चाहता है और बादलों के बिना वर्षा चाहता है।''

''जिससे कार्य किये जाते हैं उसे विधि कहते हैं अतः विधि का अर्थ होता है- कारणों का समूह। उस विधि से बोये गये धान्य को वर्षा जैसे उत्पन्न करती है उसी प्रकार अर्हन्त आदि की भक्ति ज्ञान,दर्शन,चारित्र, और तप की उत्पादक होती है।''

''जैसे विजय पताका को ग्रहाण करने के अभिलाषी मल्ल के लिए हाथ है। हाथ से ही वह जय पताका ग्रहण करता है। वैसे ही आराधना पताका ( ध्वजा ) को ग्रहण करने के इच्छुक आराधक का हाथ भाव नमस्कार है। भाव नमस्कार पूर्वक ही वह आराधना में सफलता पाता है।''

''ज्ञान चित्त का निग्रह करने में साधकतम है अतः उसके बिना चित्त का निग्रह नहीं होता, मदोन्मत चित्तरूपी हाथी के लिए ज्ञान अंकुश रूप है।

जैसे मत्त हाथी बन्धन मर्दन आदि के बिना वश में नहीं होता वैसे ही चित्तरूपी हाथी भी जिस किसी भी अशुभ परिणाम में प्रवृत्त होता है।''

''जैसे सम्यक् रीति से साधी गई विद्या पिशाच को पुरुष के वश में कर देती है। वैसे ही सम्यक् रूप से आराधित ज्ञान हृदय रूपी पिशाच को वश में करता है।

जैसे विधिपूर्वक प्रयोग किये गये मंत्र से कृष्ण सर्प शान्त हो जाता है। वैसे ही अच्छी तरह से भावित ज्ञान से हृदय रूपी कृष्ण सर्प शान्त हो जाता है।''

''जैसे चमड़े के कोड़े से जंगली मस्त हाथी भी वश में किया जाता है। वैसे ही ज्ञान रूपी चर्मदण्ड से मन रूपी हाथी वश में किया जाता है।''

''जैसे बन्दर एक क्षण भी निर्विकार होकर ठहर नहीं सकता, वैसे ही मन एक क्षण भी विषयों के बिना नहीं रहता। इसलिये इधर-उधर कूदने वाले मनरूपी बन्दर को जिनागम में सदा लगाना चाहिए। जिनागम में लगे रहने से वह मनरूपी बन्दर उस ज्ञानाभ्यास करने वाले में रागद्वेष उत्पन्न नहीं कर सकेगा।

''क्षपक के लिये सदा ज्ञानोपयोग विशेष रूप से कहा है। जैसे चन्द्रक यंत्र का वेध करने वाले के लिये सदा वींधने का अभ्यास विशेप रूप से कहा है।''

''जिस विशुद्ध लेश्या वाले के हृदय में ज्ञानरूपी दीपक जलता है उसको जिन भगवान् के द्वारा कहे गये आगम में प्रवृत्त रहते हुए 'मैं संसार की भँवर में गिरकर नष्ट होऊँगा', ऐसा भय नहीं रहता।''

''मधु-मक्खियाँ जिस प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके मधु का संचय करती हैं उसी प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके संचित किया गया संयम तीनों लोकों में जो सातिशय स्थान, ऐश्वर्य अथवा सुख है उस सबका कारण होने से सारभूत है। उसे यदि पूर्ण नहीं कर सकते तो उसका त्याग तो मत करो।''

''जैसे ऊर्ध्वलोक, अधोलोक और मध्यलोक के भेद से सब लोक आकाश के आधार हैं और सब द्वीप और समुद्र भूमि के आधार हैं वैसे-ही व्रत गुण और शील अहिंसा के आधार रहते हैं।''

''लाख प्रयत्न करने पर भी जैसे चक्के के आरे तुम्बी के बिना नहीं ठहरते और आरों के बिना नेमि नहीं ठहरती, वैसे ही अहिंसा के बिना सब शील नहीं ठहरते। उसी की रक्षा के लिए शील हैं जैसे धान्य की रक्षा के लिए बाड़ होती है।''

''तप, संयम तथा अन्यगुण सत्य के आधार हैं। जैसे समुद्र मगरमच्छों का कारण है उसमें मगरमच्छ पैदा होते और रहते हैं वैसे ही सत्य गुणों का कारण है।''

''जैसे विष उत्तमोत्तम भोजन का विनाशक है, बुढ़ापा यौवन का विनाशक है वैसे ही असत्य वचन अहिंसा आदि गुणों का विनाशक है।''

''जैसे बन्दर पेट भरा होने पर भी लाल पके फल को देखकर दूर से ही फल ग्रहण करने के लिए कूदता है, यद्यपि वह उसे फिर छोड़ देता है।''

''वैसे ही मनुष्य जो जो वस्तु देखता है, उस उसको प्राप्त करने की इच्छा करता है। लोभ से घिरा मनुष्य समस्त जगत् को पाकर भी सन्तुष्ट नहीं होता।''

''जैसे मन्द वायु बढ़कर क्षणभर में फैल जाती है या मेघ बढ़ते-बढ़ते आकाश में फैल जाते हैं। वैसे ही जीव का थोड़ा-सा भी लोभ क्षणभर में बढ़ जाता है।''

"जैसे अणु से छोटा कोई अन्य द्रव्य नहीं है और आकाश से बड़ा कोई नहीं है वैसे ही अहिंसा से महान् कोई अन्य व्रत नहीं है। जैसे सब लोक में मेरु सब पर्वतों से ऊँचा है वैसे ही शीलों और व्रतों में अहिंसा सबसे ऊँची है।"

"चोर दिन रात पकड़े जाने की आशंका से सोता नहीं है और भयभीत हिरन की तरह चारों ओर देखा करता है।"

''काम से उन्मत्त पुरुष अन्तरंग में काम की चिन्ता से जला करता है। जैसे आग से तपा ताम्बे का द्रव पीकर मनुष्य अन्तरंग में जलता है वैसे ही वह इच्छित स्त्री के न मिलने पर अन्तरंग में जलती हुई अरति रूप आग की ज्वाला में जलता है।''

''काम रूप सर्प मानसिक संकल्प रूप अण्डे से उत्पन्न होता है। उसके रागद्वेष रूप दो जिह्वाएँ होती हैं जो सदा चला करती है। विषय रूपी बिल में उसका निवास है। रति उसका मुख है। चिन्तारूप अतिरोष है। लज्जा उसकी कांचली है उसे वह छोड़ देता है। मद उसकी दाढ़ है। अनेक प्रकार के दुःख उसका जहर हैं। ऐसे कामरूप सर्प से डँसा हुआ मनुष्य नाश को प्राप्त होता है।''

''सब सर्पों में प्रमुख आशीविष सर्प होता है। उसके द्वारा डसे मनुष्य के तो सात ही वेग होते हैं। किन्तु कामरूपी सर्प के द्वारा डसे मनुष्य के दस वेग होते हैं।''

''ज्येष्ठ मास के शुक्लपक्ष में मध्याह्नकाल में आकाश के निर्मल रहते हुए सूर्य वैसा नहीं जलाता जैसा पुरुष को प्रज्वलित काम जलाता है। सूर्य अग्नि तो केवल दिन को ही जलती है किन्तु कामाग्नि रात दिन जलाती है। सूर्य के ताप से बचने के उपाय तो छाता आदि है किन्तु कामाग्नि का कोई उपाय नहीं है।''

"सूर्य से उत्पन्न ताप तो जल आदि से शान्त हो जाता है किन्तु कामाग्नि जलादि से शान्त नहीं होती। सूर्य की गर्मी तो चर्म को ही जलाती है किन्तु कामाग्नि शरीर और आत्मा दोनों को जलाती है। कामरूपी पिशाच के द्वारा पकड़ा गया मनुष्य अपने हित अहित को नहीं जानता। पिशाच के द्वारा पकड़े गये मनुष्य की तरह अपने वश में नहीं रहता।"

''दुष्ट हथनी में आसक्त जंगली हाथी की तरह मूढ़ कामी पुरुष नेत्रवाला होकर भी अन्धा होता है क्योंकि उसे समीप की वस्तु भी नहीं दिखाई देती तथा कानवाला होकर भी बहरा होता है।''

''जैसे जल में डूबा और प्रवाह में बहता मनुष्य चेतनारहित होता है। वैसे ही जिसका चित्त विषयरूपी पिशाच के द्वारा गृहीत है वह मनुष्य सब कार्यों में प्रवीण होते हुए भी मन्द होता है।''

''जैसे नीच मनुष्य किये गये उपकार को भुला देता है वैसे ही कुलीन वंश का भी व्यक्ति काम से उन्मत्त होकर पूर्व में लज्जावान होते हुए निर्लज्ज हो जाता है।''

''जैसे चोर जागते हुए व्यक्तियों पर रोष करता है वैसे ही कामी संयमीजनों पर रोष करता है तथा कामी हितकारी बात कहने वाले को शत्रु के समान देखता है।''

''जैसे रेशम का कीड़ा अपने ही मुख में से तार निकालकर उससे अपने को बाँधता है। वैसे ही दुर्बुद्धि मनुष्य विषयों के लिए स्त्री रूप पाश के द्वारा, जिसका छूटना अशक्य है, नित्य अपने को बाँधता है।''

''जैसे तिलों से भरी नलिका में तपाये हुए लोहे की सलाई के प्रवेश से तिलों का घात होता है वैसे ही मैथुन सेवन से योनि में स्थित बहुत से जीवों का घात होता है।''

"जैसे नसैनी के द्वारा छोटा आदमी भी ऊँचे वृक्ष पर चढ़ जाता है वैसे ही महिला रूपी नसैनी के द्वारा नीच पुरुष भी मान से उन्नत पुरुष रूपी वृक्ष के सिर पर चढ़ जाता है अर्थात् स्त्री के कारण नीच पुरुष के द्वारा गर्वोन्नत मनुष्य का भी सिर नीचा हो जाता है।"

"अहंकारी भी दुष्ट स्त्रियों के द्वारा नष्ट कर दिये जाते हैं। जैसे अंकुश से अति बलवान हाथी भी बैठा दिया जाता है।"

''वर्षा काल की नदियों की तरह स्त्रियों का हृदय भी नित्य कलुषित रहता है। स्त्रियों के पक्ष में हृदय शब्द का अर्थ चित्त है और नदियों के पक्ष में अभ्यन्तर है। राग, द्वेष, मोह, ईर्ष्या, परनिन्दा अथवा मायाचार से स्त्रियों का चित्त सदा कलुषित रहता है। चोर की तरह वे भी अपना कार्य करने में तत्पर रहती है और उनकी बुद्धि मनुष्य का धन हरने में रहती है।''

''जो स्त्रियों का विश्वास करता है वह व्याघ्र, विष, चोर, आग, पानी, मत्त हाथी, कृष्ण सर्प, और शत्रु का विश्वास करता है अर्थात् स्त्री पर विश्वास ऐसा ही भयानक है जैसा इन पर विश्वास करना भयानक है।''

''रस निकाली हुई ईख और शोभा रहित गन्धहीन माला जैसे अप्रिय होती है वैसे-ही यौवन धन और शक्ति पुरुष की विशेषताएँ हैं, उनके न रहने पर उसे स्त्रियाँ पसन्द नहीं करतीं।''

''जैसे व्याघ्री कोई अपकार न करने पर भी दूसरे को मारने का ही विचार रखती है उसी तरह ये स्त्रियाँ भी होती हैं। वे शत्रु के समान सदा पुरुष के अशुभ का ही चिन्तन करती हैं। जैसे किसी का कोई शत्रु सदा चित्त में सोचता रहता है- इसका धन नष्ट हो जाये, इस पर विपत्तियाँ आयें, वैसे ही स्त्रियाँ भी सदा बुरा विचारा करती हैं।''

''सन्ध्या की तरह स्त्रियों का राग भी अल्प काल रहता है। जैसे सन्ध्या की लालिमा विनाशीक है वैसे ही स्त्रियों का अनुराग भी विनाशीक है।''

''लोक में जितने तृण हैं, ( समुद्र में ) जितनी लहरें हैं, बालु के जितने कण हैं तथा जितने रोम हैं, उनसे भी अधिक स्त्रियों में मनोविकल्प हैं।''

''आकाश की भूमि, समुद्र के जल, सुमेरु और वायु का भी परिणाम मापना शक्य है किन्तु स्त्रियों के चित्त का मापना शक्य नहीं है।''

''जैसे बिजली, पानी का बुलबुला और उल्का बहुत समय तक नहीं रहते, वैसे ही स्त्रियों की प्रीति एक पुरुष में बहुत समय तक नहीं रहती।''

''परमाणु भी किसी प्रकार मनुष्य की पकड़ में आ सकता है किन्तु स्त्रियों का चित्त पकड़ में आना शक्य नहीं है वह परमाणु से भी अति सूक्ष्म है।''

"क्रुद्ध कृष्ण सर्प, दुष्ट सिंह, मदोन्मत हाथी को पकड़ना शक्य हो सकता है किन्तु दुष्ट स्त्री के चित्त को पकड़ पाना शक्य नहीं है।"

"बिजली के प्रकाश में नेत्र स्थित रूप को देखना शक्य है किन्तु स्त्रियों के अति चंचल चित्त को जान लेना शक्य नहीं है।"

''जब तक वे पुरुष को अपने में अनुरक्त नहीं जानतीं तब तक वे पुरुष के अनुकूल वर्तन-के द्वारा तथा प्रशंसा परक वचनों के द्वारा पुरुष के मन को उसी प्रकार आकृष्ट करती हैं जैसे माता बालक के मन को आकृष्ट करती है।''

''जब वे जानती हैं कि हमारे में अनुरक्त पुरुष के पास चाम हड्डी और मांस ही शेष है तो उसे वंशो में लगे मांस के लोभ से फँसे मत्स्य की तरह संताप देकर मार डालती हैं।''

''शिला पानी में तिर सकती है। आग भी न जलाकर शीतल हो सकती है किन्तु स्त्री का मनुष्य के प्रति कभी भी सरल भाव नहीं होता।''

''महाबलशाली मनुष्य समुद्र को भी पार करके जा सकता है किन्तु मायारूपी जल से भरे स्त्री रूपी समुद्र को पार नहीं कर सकता।''

''रत्नों से भरी किन्तु व्याघ्र के निवास से युक्त गुफा और मगरमच्छ से भरी सुन्दर नदी की तरह स्त्री मधुर और रमणीय होते हुए भी कुटिल और सदोष होती है।''

''जैसे गोह जिस भूमि को पकड़ लेती है, बलपूर्वक छुड़ाने पर भी उसे नहीं छोड़ती। उसी प्रकार स्त्री भी अपने द्वारा गृहीत पद को नहीं छोड़ती अथवा जैसे गोह पुरुष को देखकर उसे अपने को छिपाती है उसी प्रकार स्त्री भी पुरुष को देखकर अपने को छिपाती है कि यह मुझे न देख सकें अथवा दूसरे ने कोई अच्छा कार्य किया और स्त्री ने उसे देखा भी, फिर भी वह उसे स्वीकार नहीं करती, बल्कि व्यंग रूप से उसको बुरा ही कहती है।''

# सार्थक नाम

‘‘पुरुष का वध करती है इसलिये उसे वधू कहते हैं। मनुष्य में दोषों को एकत्र करती है इसलिये स्त्री कहते हैं।’’

‘‘मनुष्य का ऐसा ‘अरि’ शत्रु दूसरा नहीं है इसलिए उसे नारी कहते हैं। पुरुष को सदा प्रमत्त करती है इसलिये उसे प्रमदा कहते हैं।

‘‘पुरुष के गले में अनर्थ लाती है अथवा पुरुष को देखकर विलिन होती है इसलिए विलया कहते हैं। पुरुष को दुःख से योजित करती है इससे युवती और योषा कहते हैं।’’

''स्त्री पुरुष को बाँधने के लिए पाश के समान है। मनुष्य को काटने के लिए तलवार के समान है। बींधने के लिये भाल के समान है और डूबने के लिये पंक के समान है। स्त्री मनुष्य के भेदने के लिए शूल के समान है। संसार रूपी समुद्र में गिरने के लिए नदी के समान है।'' मारने को मृत्यु के समान है।

''जलाने को आग के समान है। मदहोश करने के लिए मदिरा के समान है। काटने के लिए आरे के समान है। पकाने के लिए हलवाई के समान है। विदारण करने के लिए फरसा के समान है। तोड़ने के लिए मुद्गर के समान है, चूर्ण करने के लिए लुहार के घन के समान है।''

''कदाचित् चन्द्रमा उष्ण हो जाय, सूर्य शीतल हो जाय, आकाश कठोर हो जाय किन्तु कुलीन स्त्री भी निर्दोष और भद्र परिणामी नहीं होती।''

''स्त्रियों के दोषों का विचार करने वाले पुरुषों का मन विष और आग के समान स्त्रियों से विमुख हो जाता है। जैसे पुरुष व्याघ्र आदि के दोष देखकर व्याघ्र आदि को त्याग देता है उनसे दूर रहता है, वैसे ही स्त्रियों के दोष देखकर मनुष्य स्त्रियों से दूर हो जाता है।''

‘‘रज और वीर्य रूप बीज शरीर का परिणामिकारण है। जैसे ‘समिद’ अर्थात् गेहूँ के चूर्ण से बना घेवर शुद्ध होता है क्योंकि उसका परिणामिकारण गेहूँ का चूर्ण शुद्ध है किन्तु जिसका बीज अशुद्ध है उससे बना शरीर शुद्ध कैसे हो सकता है।’’

''मल से भरे पात्र के समान यह शरीर मल से भरा होने से मलमय ही है।

जैसे विष्टा से भरे और फूटे हुए घड़े से चारों ओर से गन्दगी बहती है अथवा जैसे कृमियों से भरे घाव से दुर्गन्धयुक्त पीव बहती है वैसे ही शरीर से निरन्तर मल बहता है।''

''जैसे घाव में कीड़े भरे रहते हैं वैसे ही शरीर बहुत से कीड़ों से भरा है।

यदि शरीर मक्खी के पंख के समान त्वचा से वेष्टित न हो तो मल से भरे शरीर को कौन छूना पसन्द करेगा।''

''जैसे कोयले को सब समुद्र के जल से प्रयत्नपूर्वक धोने पर भी वह उजला नहीं होता, उसमें से कालापन ही निकलता है, वैसे ही शरीर को बहुत जलादि से धोने पर भी वह शुद्ध नहीं होता, उसमें से मल ही निकलता है।''

''जैसे मिर्च,हींग आदि मसालें मिलाकर,दुर्गन्धयुक्त मांस मांसभोजी जन खाते हैं वैसे ही कामीजन स्त्री के दुर्गन्धयुक्त शरीर को तेल फुलेल आदि से सुवासित करके भोगते हैं।''

''जैसे मोर का शरीर स्वभाव से ही सुन्दर होता है वैसे ही यदि सुगन्धयुक्त तेल से मालिश, उबटन, स्नान, आदि के बिना स्वभाव से यह शरीर शोभायुक्त होता तो उसे सुन्दर कहना उचित होता।''

''चमरी गाय की पूँछ के बाल, गैंडे वा हिरन के सींग, हाथी के दाँत, सर्प की मणि, मयूर के पंख, मृग की कस्तूरी आदि अवयव तो सारभूत देखे गये हैं अर्थात् इन सबके शरीरों में तो कुछ सार है किन्तु मनुष्य के शरीर में कोई सार नहीं है।''

‘‘बकरे का मूत्र, गाय का दूध, बैल का गोरोचन लोक में पवित्र माने गये हैं परन्तु मनुष्य के शरीर में किञ्चित् भी शुचिता नहीं है।’’

‘‘जैसे आग चूल्हे के ऊपर स्थित पात्र के जल को तपाती है वैसे ही वात पित्त और कफ से उत्पन्न हुए रोग तथा भूख प्यास श्रम आदि शरीर को सदा तपाते हैं दुःख देते हैं।’’

''उसके हृदय में धैर्यरूपी बल नहीं होता अतः वह अबला कही जाती है। कुमरण का उपाय उत्पन्न करने से कुमारी कहते हैं। पुरुष पर आल अर्थात् दोषारोप करती है इसलिए महिला कहते हैं।''

''जैसे मारने के लिए कोई किसी पुरुष को ले जाये और वह पुरुष मरने की चिन्ता न करके शराब पिये और पान खाये। वैसे ही मूढ़ मनुष्य मृत्यु की चिन्ता न करके विषयों का सेवन करते हैं।''

"जैसे पीछे लगे व्याघ्र के भय से भागता हुआ कोई मनुष्य एक ऐसे कूप में गिरा जिसमें सर्प रहता था। उस कूप की दीवार में एक वृक्ष उगा था। उसकी जड़ को पकड़कर वह लटक गया। उस जड़ को चूहे काट रहे थे। किन्तु उस वृक्ष पर मधुमक्खियों का एक छत्ता लगा था और उसमें से मधु की बूँद टपक कर उसके ओठों में आती थी। वह संकट भूल उसी मधुबिन्दु के स्वाद में आसक्त था। उसी मनुष्य की तरह मृत्युरूपी व्याघ्र से भीत प्राणी अनेक दुःखरूपी सर्पों से भरे संसार कूप में पड़ा है और आशारूपी जड़ को पकड़े हुए है।"

''जैसे मल से लिप्त बालक मल में ही रमता है वैसे ही मूढ़ मनुष्य स्वयं अत्यन्त मलिन है और मलिनता भरे स्त्री के शरीर में रमण करता है।''

''जैसे तालाब में गिरकर पत्थर उसकी तल से बैठी हुई पंक को उभारकर निर्मल जल को मलिन कर देता है, वैसे ही तरुणी का संसर्ग प्रशान्त पुरुष के भी मोह को उद्रिक्त कर देता है।''

''जैसे कतकफल डालने से गदला पानी भी निर्मल हो जाता है वैसे ही वृद्ध पुरुषों की सेवा से कलुषित मोह भी शान्त हो जाता है।''

''जैसे मिट्टी में छिपी हुई गन्ध जल का आश्रय पाकर प्रकट हो जाती है। वैसे ही तरुणों के संसर्ग से मनुष्य में छिपा हुआ मोह उदय में आ जाता है।''

''विनयवान भी चारुदत्त सेठ संगति के दोष से गणिका में आसक्त हुआ, मद्यपान में आसक्त हुआ और अपने कुल का दूषक हुआ।''

''ज्ञान, वय और तप से वृद्ध पुरुषों की संगति तरुण पुरुषों में भी वैराग्य उत्पन्न करती है जैसे बछड़े के स्पर्श से गौ के स्तनों में दूध उत्पन्न होता है।''

''जो पुरुष स्त्री के संसर्ग को विष की तरह देखकर नित्य ही उससे बचता है वह निश्चल होकर जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करता है।''

''जो मध्याह्न काल के तीक्ष्ण सूर्य की तरह स्त्री के रूप की ओर देर तक नहीं देखता और शीघ्र ही अपनी दृष्टि को उसकी ओर से हटा लेता है वह ब्रह्मचर्य का निर्वाह करता है।''

''जैसे जल में उत्पन्न हुआ और जल में ही बढ़ा कमल जल से लिप्त नहीं होता, वैसे ही विषयों के मध्य में रहते हुए भी साधु विषयों से लिप्त नहीं होता।''

''जैसे समुद्र का अवगाहन करके भी समुद्र के जल से शरीर का निर्लिप्त रहना आश्चर्यकारी है। वैसे ही विषयरूपी समुद्र के मध्य में रहकर विषयरूपी जल से चित्त का न भींगना आश्चर्यकारी है।''

''यह स्त्री रूपी वन मायाचार से गहन है। जैसे गहन वन में दूसरों का प्रवेश करना कठिन होता है वैसे ही माया को भी जानना कठिन है इसलिए माया को गहन कहा है। अतः स्त्रीरूपी वन में माया ही गहनबेल आदि झाड़ियों का समूह है। वन में हिंसक जन्तु रहते हैं। स्त्रीरूप वन में परनिन्दा, चुगली, चंचलता, भीरुता, प्रमत्तपना आदि बहुदोषरूपी हिंसक जन्तुओं का आवास है। वन में वृक्ष होते हैं जो अनेक शाखा उपशाखाओं से फैले रहते हैं। स्त्रीरूपी वन में झूठरूपी वृक्ष अपने भेद प्रभेदों के साथ रहता है। वन की तरह स्त्रीरूप वन भी भयंकर है। वन में घास फूँस रहता है। स्त्री रूपी वन में अशुचि शरीर के अंग-उपांग ही घास फूँस हैं।''

‘‘स्त्री एक नदी के समान है। उसमें शृङ्गाररूप तरंगे हैं। विलासरूप वेग है। यौवनरूप जल है तथा मन्द-मन्द हँसना ही झाग है। ऐसी स्त्रीरूपी नदी मुनि को नहीं बहा सकती।’’

‘‘यह यौवनरूप नदी विलासरूप जल से पूर्ण है अति चंचल रतिरूप इसका प्रवाह है। जो इस यौवनरूप नदी को पारकर गये और स्त्रीरूपी मगरमच्छों ने जिन्हें नहीं पकड़ा वे इस जगत में अति शूरवीर हैं।’’

''विषयरूपी बन में विचरण करने वाले जिस पुरुष को स्त्रीरूपी शिकारी के द्वारा छोड़े गये कटाक्ष दृष्टिरूपी बाणों ने नहीं बींधा वह धन्य है। इन बाणों में लगा पंख स्त्री का विलास है। विलास के साथ कटाक्ष दृष्टिरूपी बाण स्त्रीरूपी शिकारी विषयरूपी वन में विचरण करने वालों पर चलाता है।''

''स्त्री व्याघ्र के समान है भृकुटि विकार उसके तीक्ष्ण दाँत है। विलासरूपी कन्धा है। कटाक्षदृष्टि उसके नख है। यौवनरूपी वन में विचरण करने वाले जिस पुरुष को यह स्त्रीरूपी व्याघ्र नहीं पकड़ता, वह धन्य है।''

''तीनों लोकरूपी वन को जलाने वाली और विषयरूपी वृक्षों से प्रज्वलित यह कामरूप आग यौवन रूपी तृणों पर चलने में चतुर जिस मनुष्य को नहीं जलाती वह धन्य है।''

''इस विषयरूप समुद्र में यौवनरूप जल है, स्त्री का हँसना,चलना,देखना उसकी लहरें हैं और स्त्रीरूप मगरमच्छ है जो इन मगरमच्छों से अछूते रहकर इस समुद्र को पार करते हैं वे धन्य हैं।''

‘‘जैसे तुष सहित चावल का तुष दूर किये बिना उसका अन्तर्मल का शोधन करना शक्य नहीं है। वैसे ही जो बाह्य परिग्रहरूपी मल से सम्बद्ध है उसका अभ्यन्तर कर्ममल शोधन करना शक्य नहीं है।’’

‘‘जैसे ईंधन से आग को तृप्ति नहीं होती, और हजारों नदियों के मिलने से लवण-समुद्र को तृप्ति नहीं होती। वैसे ही तीनों लोक मिल जाने पर भी जीव को परिग्रह से तृप्ति नहीं होती।’’

''जैसे मांस के लिए मांस का लोभी पक्षी दूसरे मांस ले जाते पक्षी को मारता-काटता है, वैसे ही लोभी धनाढ़्य मनुष्य बिना अपराध के ही दूसरों के द्वारा घाता जाता है, मारा जाता है और पकड़ा जाता है।''

''जैसे अंकुश हाथी को उन्मार्ग पर जाने से रोकता है वैसे ही परिग्रह का त्याग इन्द्रियों को विषयों में जाने से रोकता है।''

''जैसे मंत्र, विद्या और औषधि से रहित पुरुष सर्पों से भरे जंगल में अत्यन्त सावधान रहता है। वैसे ही निर्ग्रन्थ साधु भी जो क्षायिक सम्यग्दर्शन केवलज्ञान और यथाख्यात चारित्ररूप मंत्र विद्या और औषधि से रहित है अर्थात् जिसे इन सब की प्राप्ति अभी नहीं हुई है वह रागद्वेष रूप सर्पों से भरे विषयरूप वन में सावधान रहता है।''

''जो परिग्रह से रहित है वही सदा कषाय रूप परिणामों को कृश करता है परिग्रही नहीं। क्योंकि जैसे लकड़ी डालने से आग भड़कती है वैसे ही परिग्रह से कषाय भड़कती है।''

''जैसे भार से लदा हुआ मनुष्य भार को उतारकर सुखी होता है वैसे ही परिग्रह को त्यागकर परिग्रह रहित साधु सुखी होता है।''

''आठ प्रवचन माता महाव्रत की रक्षक हैं। पाँच समितियाँ और तीन गुप्तियाँ ये आठ प्रवचन माता है। रत्नत्रय रूप प्रवचन की ये माता के समान हैं। जैसे माता पुत्रों की रक्षा करती है। वैसे ही गुप्ति और समितियाँ व्रतों की रक्षा करती हैं।''

''जिसके नहीं होने पर जो नष्ट हो जाता है। औरजिसके होने पर जो नष्ट नहीं होता वह उसका रक्षक होता है। जैसे दुर्ग राजा का रक्षक है।''

‘‘जैसे खेत की बाड़ और नगर की खाई अथवा चार दिवारी होती है वैसे ही पाप को रोकने में साधु की गुप्तियाँ होती हैं।’’

‘‘जैसे गमन करे वह गाय है गर्जन करे वह गज-हाथी है। यद्यपि गमनरूप और गर्जनरूप अर्थ नहीं होने पर भी इन अर्थों की प्रवृत्ति में निमित्तभूत वाणी जनपद सत्य है।’’

''जैसे चिक्कण गुण से युक्त कमल नीलमणि के समान निर्मल जल में सदा रहते हुए भी जल से लिप्त नहीं होता। पाँचों समितियों में अप्रमादी रूप से प्रवृत्ति करने वाला मुनि भी निरन्तर जीव निकायों से भरे हुए जगत् में गमनागमन करते हुए पाप से लिप्त नहीं होता। अर्थात् जैसे स्नेह गुण से युक्त कमलपुत्र जल से लिप्त नही होता। उसी प्रकार प्राणियों के शरीरों के मध्य में से गमनागमन करते हुए भी साधु समिति का पालन करने से पाप से लिप्त नहीं होता।''

''जैसे दृढ़ कवच से युक्त योद्धा युद्धभूमि में बाणों की वर्षा होते हुए भी बाणों से नहीं छिदता। उसी प्रकार षट्काय से जीवों के मध्यम में विचरण करता हुआ भी समितियों के कारण हिंसा आदि से लिप्त नहीं होता।''

''जैसे सावधान माता पुत्र की अनिष्टों से रक्षा करके उसका पालन करती है। वैसे ही सम्यकरूप से पालित आठ प्रवचन मातायें मुनि के सम्यग्ज्ञान सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र की रक्षा करती हैं।''

"संयम पर्वत के शिखर के समान है क्योंकि जैसे पर्वत का शिखर अचल और दुःख से चढ़ने योग्य है वैसा संयम भी है।"

"जो मुक्ति के उत्कृष्ट सुख का अनादर करके अल्पसुख के लिए निदान करता है वह करोड़ों रुपयों के मूल्यवाली मणि को एक कौड़ी के बदले बेचता है।"

''जो निदान करता है वह लोहे की कील के लिए अनेक वस्तुओं से भरी नाव को जो समुद्र में जा रही है तोड़ता है, भस्म के लिए गोशीर्षचन्दन को जलाता है और धागा प्राप्त करने के लिए मणिनिर्मित हार को तोड़ता है। इस तरह जो निदान करता है वह थोड़े से लाभ के लिए बहुत हानि करता है।''

''जैसे कोई कोढ़ी मनुष्य अपने रोग के लिए रसायन के समान ईख को पाकर उसे जलाकर नष्ट करता है वैसे ही भोग के लिए निदान करके मूर्ख मुनि सर्व दुःख और व्याधियों का विनाश करने में तत्पर मुनि पद को नष्ट करता है।''

''जीवों के कुल पथिक के विश्राम स्थान की तरह हैं। जैसे पथिक के विश्राम लेने का स्थान नियत नहीं है वैसे ही कुल भी नियत नहीं है। तब अनियत कुल का गर्व कैसा ?''

''जैसे किंपाकफल खाते समय मीठा लगता है किन्तु उसका परिणाम अतिकटुक होता है। उसको खाने वाला मर जाता है। उसी प्रकार इन्द्रियों के भोग भोगने में मधुर लगते हैं किन्तु उनका फल अतिकटु होता है।''

''जैसे कोई वन में वृक्ष की शाखा में लगे फलों को खाने में लग जाये तो उसके अपने इच्छित स्थान पर पहुँचने में विघ्न आ जाता है वैसे ही भोग का निदान करनेवाले श्रमण की भी दशा होती है।''

''जैसे एक मेढ़ा दूसरे मेढ़े पर अभिघात करने के लिये पीछे हटता है वैसे ही भोगों का निदान करनेवाले यति का ब्रह्मचर्य भी अब्रह्म अर्थात् मैथुन के लिए ही होता है।''

''जैसे व्यापारी लोभवश लाभ के लिये अपना माल बेचता है। वैसे ही निदान करनेवाला मुनि भोगों के लिए धर्म को बेचता है।''

''केवल शरीर से ब्रह्मचर्य व्रत धारण करता है अतः वह नटश्रमण है। जैसे नट श्रमण का वेश धारण करता है वैसे ही उसने भी श्रमण का वेश धारण किया है। भावश्रामण्य के बिना केवल शरीर से मुनि बनना जैसे व्यर्थ है उसी तरह उस मुनि का मुनिपद भी व्यर्थ है।''

''जैसे कोई औषधि सेवन के सुख की अभिलाषा से रोगी होना चाहता है वैसे-ही निदान करनेवाला भोगों की तृष्णा से दुःख चाहता है।''

''जैसे कोई भारी शिला को कन्धे पर उठाता है और उसके उठाने के कष्ट की परवाह नहीं करता। वैसे ही इस दुर्धर संयम को धारण करने से मुझे भोगों की प्राप्ति हो इस निदान के साथ जो संयम धारण करता है उसका संयम धारण भोगों के लिये है अर्थात् स्वल्पसुख के लिए बहुत दुःख उठाता है।''

''जैसे सुख की अपेक्षा के बिना थोड़ा-सा भी दुःख पुरुष को कष्टादायक होता है वैसे ही लोक में इन्द्रियजन्य सुख दुःख की अपेक्षा के बिना नहीं है।''

''जैसे खाज को नखों से खुजाने वाला दुःख को सुख मानता है। उसी प्रकार मैथुन के समय वेगपूर्वक आलिंगन, ओष्ठ काटना, छाती मसलना, तीक्ष्ण नखों से शरीर नोंचना, केश खीचना आदि से होने वाले दुःख को कामी सुख मानता है।''

''जैसे कुष्ठ रोग से पीड़ित व्यक्ति का शरीर आग में जलने पर भी कुष्ठ रोग शान्त नहीं होता; क्योंकि आग कुष्ठ रोग को शान्त नहीं करती, बल्कि बढ़ाती है। और जो जिसको बढ़ाता है वह उसको शान्त नहीं कर सकता। जैसे आग कुष्ठ रोग को शान्त नहीं करती। उसी प्रकार स्त्री का संगम स्त्री विषयक अभिलाषा को बढ़ाता है।''

''जैसे बेचारा कीट घोषा नामक लता को खाते हुए उसे मीठी मानता है उसी प्रकार कामी जन दुःख का अनुभव करते हुए उसे सुख मानता है।''

"जैसे मद्य पीने वालों के संसर्ग से मद्य पीने की अभिलाषा करने लगता है वैसे ही स्वभाव से ही मोही जीव तरुणों के संसर्ग से विषयों की अभिलाषा करता है।"

"जैसे अच्छी तरह खोजने पर भी केले के वृक्ष में मूल मध्य या अन्त में कहीं भी कुछ सार नहीं है वैसे ही खोजने पर भी भोगों में कुछ भी सार नहीं है।"

''जैसे कुत्ता सूखी हड्डी को चबाते हुए रस प्राप्त नहीं करता, किन्तु तीक्ष्ण हड्डी के द्वारा कटे अपने तालु से झरते हुए रक्त का स्वाद लेते हुए सुख मानता है। उसी तरह पुरुष स्त्री आदि विषयभोग में किञ्चित् भी सुख प्राप्त नहीं करता वह बेचारा अपने शरीर के श्रम को ही सुख मानता है।''

''जैसे वन में हिरण आदि जब प्यास से व्याकुल होकर जल की इच्छा करते हैं तो उन्हें मरीचिका जल के समान प्रतीत होती है किन्तु हिरण के उसे जल मानने पर भी वह जल रूप नहीं होती। उसी प्रकार राग के प्यासे को भोग सुख की तरह प्रतीत होते हैं, परन्तु सुख नहीं मिलता।''

‘‘जैसे श्मशान में व्याघ्र मुर्दे को खाकर सुखी होता है वैसे ही दुर्गन्धित शरीर के आलिंगन में अज्ञानी सुख मानकर हर्ष से भर जाते हैं।’’

‘‘जैसे ग्रीष्म ऋतु में अत्यन्त वेग से दौड़ते हुए और मध्याह्न काल के सूर्य की किरणों से संतप्त पुरुष को मार्ग में स्थित एक वृक्ष की छाया में जाने से थोड़ा-सा सुख होता है वैसे ही भोग में अति अल्प सुख है।’’

''नदी में डूबते हुए और प्रवाह के द्वारा बहाकर ले जाते हुए मनुष्य को भूमि से अंगूठे के छू जाने पर जैसा सुखाभास होता है कि मैं तट पर लग जाऊँगा, उसी प्रकार इन्द्रियजन्य सुख अति अल्प होता है।''

''जैसे-जैसे भोगों को भोगते हो वैसे-वैसे भोगों की तृष्णा बढ़ती है। जैसे ईंधन से आग प्रज्वलित होती है वैसे ही-भोगों से तृष्णा बढ़ती है।''

''जैसे ईंधन से आग की तृप्ति नहीं होती। अथवा जैसे हजारों नदियों से समुद्र की तृप्ति नहीं होती, वैसे ही भोगों से जीव को तृप्ति नहीं होती।''

''जैसे कुएँ की दीवार के एक ओर लटका हुआ मनुष्य टपकने वाले मधु की बूँदों को ही देखता है किन्तु अपने गिरने को नहीं देखता। वैसे ही निदान करने वाला भोगों को तो देखता है किन्तु अपने दीर्घ संसार को नहीं देखता।''

''जैसे मत्स्य भय को न जानते हुए जाल के मध्य में उछलते-कूदते हैं, वैसे ही जीव संसार की चिन्ता न करके परिग्रह आदि में आनन्द मानते हैं।''

''जैसे देशान्तर में गया व्यक्ति सर्वत्र घूमकर अपने घर को ही जाता है वैसे ही बड़े कष्ट से प्राप्त देव और मनुष्य सम्बन्धी भोगों को भोगकर उन भोगों के नष्ट हो जाने पर नियम से कुयोनि में जाता है।''

''जैसे मरा हुआ वैद्य मरते हुए की रक्षा नहीं कर सकता। वैसे ही कुयोनि में जाकर उस दुःख भोगते हुए जीव का स्त्री वस्त्र आदि भोग क्या कर सकते है? वे उसका किञ्चित् भी दुःख दूर नहीं कर सकते।''

''जैसे लम्बे धागे से बंधा पक्षी सुदूर जाकर भी पुनः वहीं लौट आता है। वैसे ही परभव सम्बन्धी विषय सुख में मन लगाने वाला निदानी महान् वृद्धि से सम्पन्न स्वर्गादि स्थानों में जाकर भी संसार में ही लौट आता है।''

''जैसे कोई जेलखाने में पड़ा व्यक्ति, मैं इतना समय बीतने पर तुम्हारा धन तुम्हें लौटा दूंगा तुम मुझे धन देदो, ऐसा वादा करके धन लेता है और वह धन जेल के रक्षकों को देकर अपने घर में सुखपूर्वक निवास करता है किन्तु उसे पुनः कर्ज देने वाले पकड़ लेते हैं उसी प्रकार निदान करने वाला अपने द्वारा किये गये पुण्य से स्वर्ग प्राप्त करके भी पुनः गिरता है।''

''जैसे धन देकर कारागार से मुक्त हुआ कर्जदार सुखपूर्वक घर में रहता है। किन्तु कर्ज चुकाने का समय आने पर पुनः पकड़कर बन्द कर दिया जाता है। वैसे ही मुनिपद धारण करके निदान करने वाला स्वर्ग में क्लेश रहित सुखपूर्वक रहता है और वहाँ से च्युत होकर संसार में ही भ्रमण करता है।''

''जैसे विषैले काँटों से बिंधे हुए मनुष्य अटवी में अकेले पड़े हुए दुःख पाते हैं, वैसे ही मिथ्यात्व माया और निदान शल्यरूपी काँटों से बींधे हुए वे पार्श्वस्थ मुनि दुःख पाते हैं।''

''जैसे बकरी का बच्चा सुगन्धित तेल भी पिये फिर भी अपनी पूर्व दुर्गन्ध को नहीं छोड़ता। उसी प्रकार दीक्षा लेकर भी अर्थात् असंयम को त्यागने पर भी कोई-कोई इन्द्रिय और कषाय रूप दुर्गन्ध को नहीं छोड़ पाते।''

''जैसे सुअर सुन्दर स्वादिष्ट आहार खाते हुए भी चिरंतन अभ्यास वश विष्टा ही खाना पसन्द करता है। उसी प्रकार व्रतों को ग्रहण करके भी कोई-कोई इन्द्रिय और कषायरूप अशुभ परिणाम वाले होते हैं।''

''जैसे व्याध के भय से भागा हुआ हिरन अपने झुण्ड को जाल में फँसा देखकर झुण्ड के मोह से स्वयं भी जाल में फँस जाता है वैसे ही कोई मुनि गृह त्यागने के बाद मोह के वश हो स्वयं ही उसमें फँस जाता है।''

''जैसे पींजरे से मुक्त हुआ पक्षी उद्यानों में स्वेच्छापूर्वक विहार करते हुए स्वयं ही अपने आवास से प्रेमवश पींजरे में चला जाता है।

जैसे कीचड़ में फँसा हाथी का बच्चा बलवान् हाथी के द्वारा निकाला गया। किन्तु पानी की प्यासवश वह स्वयं ही कीचड़ में फँस जाता है।

जैसे पक्षी आग से घिरे वृक्ष से उड़कर स्वयं ही अपने घोंसले के कारण उस वृक्ष पर जा पहुँचता है।

जैसे किसी सोते हुए मनुष्य पर से सर्प जा रहा है। उसे कोई जागता हुआ मनुष्य उठाता है और वह उठकर कौतूहलवश उस सर्प को पकड़ना चाहता है।

जैसे कोई निर्लज्ज घिनावना कुत्ता अपने ही वमन किये भोजन को भोजन की तृष्णावश लोलुपता से खाता है।

वैसे ही गृहवास के दोषों से मुक्त कोई दीक्षा स्वीकार करके भी गृहवास के उन्हीं इन्द्रिय और कषायरूप दोषों को स्वीकार करता है।''

''जिससे निकलना कठिन है ऐसे कालरूपी लोहे के पींजरे के पेट में गये सिंह की तरह, जाल में फँसे हिरणों की तरह, अन्यायरूपी कीचड़ में फँसे बूढ़े हाथी की तरह, पाश से बद्ध पक्षी की तरह, जेल में बन्द चोर की तरह, व्याघ्रों के मध्य में बैठे हुए दुर्बल हिरण की तरह, जिसके पास में जाने से संकट आया है ऐसे जाल में फँसे मगरमच्छ की तरह, गृहस्थाश्रम में रहनेवाला मनुष्य कालरूपी अत्यन्त गाढ़े अन्धकार के पटल से आच्छादित हो जाता है।''

''रागरूपी महानाग ग्रहस्थाश्रम में रहने वाले व्यक्ति को सताते हैं। चिन्तारूपी डाकिनी उसे खा जाती है। शोकरूपी भेड़िये उसके पीछे लगे रहते हैं। कोपरूप आग उसे जलाकर राख कर देती है। दुराशारूपी लताओं से वह ऐसा बंध जाता है कि हाथ पैर भी नहीं हिला पाता। प्रिय का वियोगरूपी वज्रपात उसके टुकड़े कर डालता है। प्रार्थना करने पर न मिलने रूपी सैकड़ों बाणों का वह तरकस बन जाता है अर्थात् जैसे तरकस में बाण रहते हैं वैसे ही गृहस्थाश्रम में वांछित वस्तु का लाभ न होनेरूपी बाण भरे हैं। मायारूपी बुढ़िया उसे जोर से चिपकाये रहती है। तिरस्काररूपी कठोर कुठार उसे काटते रहते हैं। अपयशरूपी मल से वह लिप्त होता है। महामोहरूपी जंगली हाथी के द्वारा वह मारा जाता है। पापरूपी घातकों के द्वारा वह ज्ञानशून्य कर दिया जाता है। भयरूपी लोहे की सुइयों से कोंचा जाता है। प्रतिदिन श्रमरूपी कौओं के द्वारा खाया जाता है। ईर्षारूपी काजल से विरूप किया जाता है। परिग्रहरूपी मगरमच्छों के द्वारा पकड़ा जाता है।''

''जो साधु दीक्षित होकर भी इन्द्रिय और कषायों के बन्धन में पड़ता है वह हाथ में स्थित जलते हुए अलात को छोड़ना नहीं चाहता, वह काले साँप को लाँघता है और भूखे व्याघ्र का स्पर्श करता है।''

''जो साधु दीक्षित होकर भी इन्द्रिय और कषाय के अधीन होता है वह अज्ञानी अपने गले में पत्थर बाँधकर अगाध तालाब में प्रवेश करता है।''

''जो इन्द्रियरूपी ग्रह से पकड़ा हुआ है वही ग्रह पीड़ित है। जो ग्रह से पकड़ा हुआ है वह ग्रहपीड़ित नहीं है। क्योंकि ग्रह तो एक ही भव में कष्ट देता है किन्तु इन्द्रियरूपी ग्रह सैकड़ों भवों में कष्ट देता है।''

''जो कषाय से उन्मत्त (पागल) है वही उन्मत्त है। जो पित्त से उन्मत्त है वह उन्मत्त नहीं है। इससे पित्त के द्वारा हुए उन्माद से कषाय के द्वारा हुए उन्माद की निकृष्ट बतलाया है। क्योंकि कषाय से उन्मत्त पुरुष जैसा पाप करता है पित्त से उन्मत्त वैसा पाप नहीं करता।''

''जैसे धनुष बाण लेकर युद्ध के लिए तैयार रथारोही यदि युद्ध से भागता है तो निन्दा का पात्र होता है। उसी प्रकार दीक्षित साधु यदि इन्द्रिय और कषाय के वश में होता है तो निन्दा का पात्र होता है।''

''जैसे मुकुट आदि से सुशोभित और हाथ में शस्त्र लिये हुए कोई भिक्षा के लिए घूमता है तो निन्दा का पात्र होता है। वैसे ही दीक्षित होकर इन्द्रिय और कषाय के वश में होने वाला भी निन्दा का पात्र होता है।''

''जैसे चित्र में अंकित श्रमण वास्तविक श्रमण के समान रूपवाला होने पर भी श्रमण नहीं है उसी प्रकार श्रमण का वेष धारण करके भी जिसके परिणाम अशुभ हैं वह श्रमण नहीं है।''

''जैसे सत्त्वसम्पन्न मनुष्य का शस्त्र और कवच शत्रु का नाश करता है। वैसे ही इन्द्रिय और कषाय को जीतने के द्वारा ज्ञान मनुष्य के दोषों को दूर करता है।''

''जैसे सत्त्वहीन पुरुष का कवच और तलवार चक्र आदि शस्त्र शत्रु को जीतने रूप अतिशय को नहीं प्राप्त करता। वैसे ही इन्द्रिय और कषाय को न जीतने पर ज्ञान दोषों को दूर करने रूप अतिशय को प्राप्त नहीं करता।''

''इन्द्रिय और कषायरूप परिणामों के दोष से ज्ञान भी मनुष्यों में दोष उत्पन्न करता है। दूसरे के संसर्ग से उपकारी भी अनुपकारी हो जाता है। जैसे आहार प्राण धारण में निमित्त है किन्तु विष से मिला आहार प्राणों का घातक होता है और इन्द्रिय तथा कषायों को जीतने से ज्ञान पुरुष में गुण उत्पन्न करता है। जैसे विष से रहित उत्तम आहार बल, रूप, तेज और आयु को बढ़ाता है।''

''इन्द्रिय और कषायरूप परिणामों के दोष से ज्ञान भी पुरुष के गुणों को नष्ट करता है। जैसे कायर पुरुष के हाथ में गया शस्त्र उसके ही वध में निमित्त होता है।''

''इन्द्रिय और कषायों के दोष से अच्छे प्रकार से बहुत से शास्त्रों का ज्ञाता भी विद्वान् अपमान का पात्र होता है। जैसे हाथ में अस्त्र के होते हुए भी मरे मनुष्य को गृद्ध खा जाते हैं।''

''जिसका ज्ञान होता है उसी का उपकारी होता है यह बात प्रसिद्ध है किन्तु इन्द्रिय और कषाय से मलिन ज्ञान जिसका होता है उसका उपकार नहीं करता, दूसरों का उपकार करता है। जैसे गधे पर लदा चन्दन दूसरों का उपकार करता है।''

''जो इन्द्रिय और कषायों से प्रभावित है, उसका ज्ञान वस्तुस्वरूप का प्रकाशक नहीं होता। जैसे, जिसने आँखे मूँदी है उसके लिए तीव्रता से जलता हुआ दीपक पदार्थों का प्रकाश नहीं करता।''

''इन्द्रिय और कषायों के वश में हुआ बहुत श्रुत विद्वान् भी चारित्र में उद्योग नहीं करता। जैसे जिसका पर कट गया है ऐसा पक्षी इच्छा करते हुए भी नहीं उड़ सकता।''

''इन्द्रिय और कषाय के योग से बहुत भी ज्ञान स्वयं नष्ट हो जाता है। जैसे शक्कर के साथ कढ़ा हुआ दूध (मावा) विष के मिलने से नष्ट हो जाता है अर्थात् अपने स्वभाव को छोड़ देता है।''

''जैसे घोड़े की लीद ऊपर से चिकनी और भीतर से खुरदरी होती है वैसे ही किसी का बाह्य आचरण तो समीचीन होता है किन्तु अभ्यन्तर परिणाम शुद्ध नहीं होते। उसे घोड़े की लीद के समान कहा है। इन्द्रिय और कषायरूप अशुभ परिणाम के द्वारा अभ्यन्तर तपोवृत्ति जिसकी नष्ट हो चुकी है वह बाह्य अनशन आदि तप करे भी तो क्या लाभ है। वह तो नदी के तटपर निश्चल बैठे हुए बगुले की तरह है।''

''जैसे आग के होने पर ही धूम होता है अतः जहाँ धूम होता है वहाँ आग अवश्य होती है। इसी को अविनाभाविता कहते हैं। धूम लिंग है आग लिंगी है। इसी प्रकार बाह्य कार्य के साथ अभ्यन्तर कारण का लिंग-लिंगी भाव सम्बन्ध जानना।''

"वन में हिरण मुख के वाष्प से टूटनेवाले सरस सुगन्धित तृणों के अग्रभागों को खाकर और कोमल वायु के द्वारा शीतल किये गये स्फटिक के समान स्वच्छ जल को पीकर पुष्ट होता है। उसकी गति मन से भी तीव्र होती है। वह व्याध के मनोहर गीत को सुनकर सुख से अपनी आँखे मूँद लेता है। और दुष्ट यमराज की दाढ़ के समान तीक्ष्ण विशाल बाणों के द्वारा छेदा जाकर अत्यन्त प्रिय प्राणों को त्याग देता है। एक कलिका के आकार दीपक के रूप से अनुराग करनेवाला पतंगा दीपक की लौ में जलकर भस्म हो जाता है। वन का हाथी स्त्री के हृदय की तरह जिसमें प्रवेश करना कठिन है, जो संसार की तरह महान् है और विपत्ति की तरह जिसे लांघना अशक्य है ऐसे महान् वन में सल्लकी के तरुण वृक्षों की शाखा खाता है, रमणीक पहाड़ी नदी और बड़े-बड़े तालाबों में स्वेच्छापूर्वक जल पीता है, अवगाहन करता है, डुबकी लगाता है, अनेक अनुकूल हथिनियों का समूह उसके पीछे चलता है, हथिनी के विशाल जघन भाग के स्पर्शन में अनुरक्त होकर मदमत्त हो, राग की अधिकतारूपी अन्धकार के पटल से आँखें बन्द कर लेता है और महान् गर्त में गिरकर कष्ट भोगता है। युवा पुरुषों के मनरूपी सरोवर में विलास करनेवाली स्त्रियों के लोचन के हावभाव का अनुकरण करनेवाला मच्छ थोड़े से भोजन की लोलुपतावश शीघ्र ही विपत्ति में पड़ जाता है। अनेक प्रकार के सुगन्धित फूलों के समूह की रज से आवेष्ठित भौंरा विष-वृक्ष के फूल की गन्ध से प्राण खो देता है। इस प्रकार एक-एक इन्द्रिय के वश होकर ये कष्ट उठाते हैं। फिर जो पंचेन्द्रिय के वश है उसका क्या कहना ?"

''जैसे कोई पुरुष रुष्ट होकर दूसरे का घात करने के लिए तपा लोहा उठाता है। ऐसा करने से दूसरा उससे जले या न जले, पहले वह स्वयं जलता है। उसी प्रकार पिघले हुए लोहे की तरह क्रोध से पहले वह स्वयं जलता है। दूसरे को वह दुःखी करे या न करे। ''

''जैसे आग ईंधन को नष्ट करके पीछे स्वयं बुझ जाती है उसी प्रकार क्रोध पहले क्रोधी मनुष्य को नष्ट करके पीछे निराधार होने से स्वयं नष्ट हो जाता है।''

''जैसे चिनगारी एक वर्ष के श्रम से प्राप्त खलिहान में आये किसान के धान्य को जला देती है उसी प्रकार क्रोध रूपी आग श्रमण के जीवन भर में उपार्जित पुण्य धन को जला देती है।''

“जैसे उग्र विषवाले सर्पको घास के एक तिनके से मारने पर वह अत्यन्त रोष में आकर उस तिनके पर अपना विष वमन करके तत्काल विष रहित हो जाता है उसी प्रकार यति भी क्रोध करके अपने रत्नत्रय का विनाश करता है और शीघ्र ही निस्सार हो जाता है।”

“सुन्दर सुरूप पुरुष भी क्रोध से रूप के नष्ट हो जाने पर बन्दर के समान लाल मुख-वाला विरूप हो जाता है।”

''जैसे एक कोटी धन का स्वामी होने पर भी यदि शरीर में कील काँटा घुसा हो तो शारीरिक सुख नहीं मिलता। उसी प्रकार तप से समृद्ध होने पर भी यदि भीतर में मायारूपी शल्य घुसा है तो मोक्ष लाभ नहीं हो सकता।''

''शत्रु, आग, व्याघ्र और कृष्ण सर्प भी वह बुराई नहीं करता जो बुराई कषाय रूपी शत्रु करता है। वह कषायरूप शत्रु मोक्ष में बाधारूप महादोष का कारण है।''

"इन्द्रिय कषायरूपी घोड़े दुर्दमनीय हैं इनको वश में करना बहुत कठिन है। वैराग्यरूपी लगाम से ही ये वश में होते हैं। किन्तु उस लगाम के ढीले होने पर वे पुरुष को दुःखदायी पापरूपी विषय स्थानों में गिरा देते हैं, किन्तु इन्द्रिय कषायरूपी दुर्दमनीय घोड़े जब वैराग्यरूपी लगाम से नियमित होते है और ध्यानरूपी कोड़े से भयभीत रहते हैं तो विषयरूपी पापस्थान में नहीं गिराते।"

''इन्द्रिय और कषायरूपी सर्पों से ड़से हुए मनुष्य बहुत कष्ट से पीड़ित होकर, उत्तमध्यानरूपी सुख से भ्रष्ट हो, संयमरूपी जीवन को त्याग देते हैं, किन्तु इन्द्रिय और कषायरूपी सर्प सम्यग्ध्यानरूपी सिद्ध औषधि और वैराग्यरूपी मंत्रों से वश में होने पर साधु के संयमरूपी जीवन को नहीं हरते।''

"इन्द्रियाँ बाण के समान पुरुष रूपी हिरन को बींधती है। बाण में पुंख होते हैं। भोगे हुए भोगों का स्मरण इनका पुंख है। भोगों की चिन्ता इनका वेग है। रति इनकी धारा-गति है जो विषयरूपी विष से लिप्त है। ये इन्द्रियरूप बाण मनरूपी धनुष के द्वारा छोड़े जाते हैं। ध्यानरूपी श्रेष्ठ शक्ति से युक्त श्रमण योद्धा सम्यग्ज्ञानरूप दृष्टि से देखकर धैर्यरूप फलक के द्वारा इन्द्रियरूप बाणों का वारण (प्रतिकार) करते हैं।"

''परिग्रहरूपी घोर वन में कषायरूपी विषैले काँटे फैले हैं। प्रमाद उनका मुख है और विषयों की चाह से वे तीक्ष्ण हैं। धैर्यरूपी दृढ़ जूते को धारण किये बिना जो उस वन में विचरण करता है, उसे वे काँटे बींध देते हैं। अर्थात् जिस मुनि ने धैर्यरूपी दृढ़ जूता धारण किया है और जो सम्यग्ज्ञानोपयोग दृष्टि से सम्पन्न है उसको वे कषायरूपी विषैले काँटे कुछ भी दुःख नहीं देते।''

''कषायरूपी बन्दर असंयत हैं, अतिचपल हैं, पापी हैं, इनका हृदय परिग्रहरूपी फल में आसक्त है। इनका यदि निग्रह नहीं किया तो ये संयमरूपी उद्यान का विनाश कर देते हैं।''

''कषायरूपी बन्दर निरन्तर चपल हैं, त्रिकालवर्ती दोषों का अनुसरण करने में चतुर हैं। इन्हें संयमी संयमरूपी रस्सी से बाँधता है।''

''सन्तोषरूपी कवच, उपशमरूपी बाण और ज्ञानरूपी शस्त्रों से सहित साधुओं के द्वारा ही इन्द्रिय और कषायरूप शत्रु जीते जा सकते हैं।''

''इन्द्रिय और कषायरूपी चोर शुभध्यान रूप भावों की सांकल से बाँधे जाते हैं। बाँधे जानेपर वे सांकल से बँधे चोरों की तरह विकार नहीं करते है।''

''इन्द्रिय और कषायरूपी व्याघ्र संयमरूपी मनुष्य को खाने के बड़े प्रेमी होते हैं। इन्हें वैराग्यरूपी लोहे के मजबूत पींजरे में रोका जा सकता है।''

''इन्द्रिय कषायरूपी हाथी यद्यपि स्वच्छन्द है तथापि व्रतरूपी बाड़े में ले जाकर विनयरूपी रस्सी से उपायपूर्वक बाँधे जाने पर वश में लाये जा सकते हैं।''

“इन्द्रिय और कषायरूप हाथी शीलरूपी अर्गला को लांघना पसन्द करते हैं। अतः धीर पुरुषों को उनके दोनों कानों के पास धैर्यरूपी प्रहार करके रोकना चाहिए। अर्थात् इन्द्रिय और कषायरूप हाथी जब दुःशीलरूपी वन में प्रवेश करना चाहे तो उसे ज्ञानरूपी अंकुश से वश में करना शक्य है।”

''यदि रागद्वेषरूपी मद से मस्त विषयरूपी गन्धहस्ती ज्ञानांकुश के बिना विज्ञान ध्यानरूपी योद्धा के वश में नहीं रहता और परिग्रहरूपी वन में प्रवेश करता है, तो इन्द्रिय और कषायरूप बालहस्ती विषयरूपी वन में क्रीड़ा करने के प्रेमी होते हैं। उन्हें प्रशमरूपी वन में अर्थात् आत्मा और शरीर के भेदज्ञान से प्रकट हुए स्वाभाविक वैराग्य में रमण कराना चाहिए तब वे दोष नहीं करेंगे।''

''जैसे जीवन का इच्छुक रोगी स्वादरहित कड़वी औषधी पीता है वैसे ही तू मोक्ष के लिए कटुक भी इन्द्रियजय का सेवन कर।''

आग से तृण की तरह क्रोध से दुःख से उपार्जन किया गया दुर्लभ और दुश्चर मेरा धर्म नष्ट होता है। यह क्रोधरूपी आग मनुष्यों के धर्मवन को जलाती है। यह क्रोधरूपी आग अज्ञानरूपी काष्ठ से उत्पन्न होती है, अपमानरूपी वायु उसे भड़काती है। कठोर वचनरूपी उसके बड़े स्फुलिंग है। हिंसा उसकी शिखा है और अत्यन्त वैर उसका उठा हुआ धूम है।''

''पूर्व जन्म में मैंने जिसका अपराध किया था उसके द्वारा इस जन्म में उस अपराध से उपार्जित पापकर्म की उदीरणा किये जाने पर उसको भोगते हुए मुझे दुःख कैसा ? साहूकार से पहले कर्ज लेकर जिस धन को मैंने स्वयं भोगा है, उतना ही धन उस ऋण का अवधिकाल आने पर देते हुए कौन कर्जदार दुःखी होता है ? कोई नहीं।''

''जैसे तालाब का जल मैला हो तब भी लोग उसे मैला नहीं मानते। आशय यह है कि पुण्यशाली को माया से कोई लाभ नहीं है क्योंकि दोष प्रकट होने पर भी वह जगत में मान्य रहता है।''

''जैसे घर में यदि सर्प घुसा हो तो उसे निकाले बिना सोना शक्य नहीं है। उसी प्रकार जो संसार रूपी महावन से निकलना चाहता है वह दोषों को दूर किये बिना उस महावन से निकलने में समर्थ नहीं होता।''

''जैसे शस्त्रधारी बहुत से शत्रुओं के मध्य में कोई निर्भय होकर नहीं सो सकता, उसी प्रकार संसार को बढ़ाने वाले रागादि दोषों के उपशान्त हुए बिना कौन निर्भय होकर सो सकता है ?''

जैसे रोग से पीड़ित पुरुष के लिए यत्नपूर्वक दी गई अति शक्तिशाली औषध होती है। उसी प्रकार  जन्ममरण आदि रोग से पीड़ित की श्रेष्ठ औषध तप है।

संसाररूपी महादाह से जलते हुए प्राणी के लिए तप जलधर है, जैसे सूर्य की किरणों से जलते हुए मनुष्य के लिए धाराधर बादल होता है।

''अज्ञानरूपी घोर अन्धकार में विचरण करने वाले के लिए सम्यक् तप दीपक के समान है। सम्यक् तप सब अवस्थाओं में पिता की तरह पुरुष को हित में लगाता है। तप कषायरूप अति चपल नदी को पार करने के लिए नौका है।''

''जैसे मधुलिप्त तलवार की धारको जिह्वा से चाटने से प्रारम्भ में मधु के कारण थोड़ा सुख होता है किन्तु जीभ कट जाने पर बहुत दुःख होता है उसी प्रकार विषय भोग में भी सुख अल्प है दुःख बहुत है।''

''जैसे जल से प्यास बुझ जाती है वैसे ही तप से विषयों की प्यास बुझ जाती है। जैसे प्रज्वलित आग तृण को जलाती है वैसे ही तपरूपी आग कर्मरूपी तृणों को जलाती है।''

''जैसे सूर्य के उदय होने पर खिला हुआ कमलों का वन शोभित होता है उसी प्रकार आचार्य के अभिमुख हुए यतियों के मुख कमलों से, जो आश्चर्ययुक्त नेत्ररूपी पत्रों से संयुक्त होते हैं, वह मुनिसभा शोभित होती है।''

''आचार्य के उपदेशरूपी अमृत का पान करके चित्त के आह्लादयुक्त होने पर क्षपक वैसा ही सुखी होता है जैसा प्यासा अमृतमय पानक पीकर होता है।''

''गुणों से भरी नाव को संसार-समुद्र में डूबते हुए देखकर यदि कोई उपेक्षा करता है तो उससे बड़ा अधार्मिक दूसरा कौन होगा ?''

''भुजा स्फालन करने वाले कुलीन अभिमानी के लिये युद्ध में सन्मुख मरना श्रेष्ठ है किन्तु सुजनों के मध्य में जीवन पर्यन्त लज्जा उठाना श्रेष्ठ नहीं है।''

"जिस प्रकार अपने जीवन के लिये युद्धभूमि से भागकर कौन अपने पुत्र पौत्र आदि के लिये अपवाद का कारण बनेगा और अपने परिवार को लांछन लगायेगा? कोई नहीं, उसी प्रकार हे क्षपक! अपने जीवन के लिये परीषह आदि आने पर अपनी निर्बलता का परिचय देते हुए अपने कुल और संघ को लोकापवाद का पात्र मत बनाओ और अपने गण पर लांछन मत लगाओ।"

‘‘स्वाभिमानी संयमी श्रमण का मर जाना श्रेष्ठ है किन्तु लज्जाजनक कार्य करना श्रेष्ठ नहीं है, कातरता-विपत्तियों से घबराना, दीनता, कृपणता- कि मैं कुछ भी नहीं कर सकता आदि श्रेष्ठ नहीं है।’’

‘‘युद्ध में शूरवीर पुरुष जोरदार प्रहार से पीड़ित होने पर भी शत्रु के सामने से अपना मुख नहीं मोड़ते और मुख पर भौं टेढ़ी किये हुए ही मरते हैं। उसी प्रकार सत्पुरुष अत्यन्त आपत्ति आने पर भी कातर नहीं होते, वे दीनता या कायरता नहीं दिखाते।’’

''यदि कोई देव या दानव मेरु के समान लोहे के पिण्ड को उष्ण नरक में फेंके तो वह लोहपिण्ड वहाँ की भूमि को प्राप्त होने से ही पहले मार्ग में ही नरकबिलों की उष्णता से पिघल जाये। तथा इसी प्रकार उस पिघले हुए मेरु प्रमाण लोहपिण्ड को यदि शीत नरक में फेंका जाये तो भूमि को प्राप्त होने से पहले ही वह वहाँ के शीत से जमकर खण्ड-खण्ड हो जाय।''

''जैसे किसी मूर्छारहित मनुष्य के शरीर को कुचलकर उसे खारे तप्त तेल से सींचने पर जैसी वेदना होती है वैसी ही तीव्र वेदना नरक में नारकी के शरीर में स्वभाव से ही होती है।''

''अनुकूल क्रिया, भाषा, सज्जनता, नम्रता, सुख-शीलता, लज्जा, दया, इन्द्रिय दमन, दान, प्रसन्नता, मार्दव, क्षमा आदि जो प्रशस्त सुगुण प्राणियों में होते हैं वे गुण नरक में वैसे ही दुर्लभ हैं जैसे घोर वन में मनुष्य का मिलना दुर्लभ है।''

''जैसे मोक्ष के इच्छुक विरागी मुनि सब उपसर्गों को सहते हैं। पराधीन बेचारे एकेन्द्रिय भी सब उपसर्गों को सदा सहते हैं। जैसे जन्म से अन्धे गूँगे बहरे बालक रक्षा और शरण से विहीन हुए बेचारे विवश होकर मार्गों में हाथी घोड़े सवारी आदि से कुचलकर मर जाते हैं। जैसे कोई स्वाधीन वयस्क पुरुष क्रीड़ासक्त हो, सरोवर में प्रवेश करके बहुत बार जल में डूबता और उतरता है। वैसे ही शरीरधारी प्राणी जन्मरूपी समुद्र के मध्य में प्रवेश करके कटुक दुःखरूपी जल को पीते हुए एक अन्तर्मुहूर्त में भी बहुत बार जन्म लेते और मरते हैं।''

''जिस वायु से मेरुपर्वत का पतन हो सकता है उसके सामने सूखा पता कैसे ठहर सकता है ? इसी प्रकार जो कर्म अणिमा आदि आठ गुणों से सम्पन्न देवों की भी दुर्गति कर देता है उसके सामने तुम्हारे जैसे मरणोन्मुख मनुष्य की क्या गिनती है ?''

''कर्म बड़े बलवान है। जगत् में कर्म से बलवान कोई नहीं है। जैसे हाथी कमलों के वन को रौंद डालता है। वैसे ही कर्म बन्धु, ज्ञान, द्रव्य, शरीर और परिवार आदि सब बलों को नष्ट कर देता है।''

''जैसे मुट्ठियों से आकाश को मारना, चावल के लिये उसके छिलकों को कूटना, तेल के लिये कोल्हू में रेत पेलना, और घी के लिये जल को मथना निरर्थक है उसी प्रकार वेदना से पीड़ित व्यक्ति का संक्लेश करना निरर्थक है।''

''जैसे कोई कर्जदार साहूकार से ऋण लेकर स्वयं उसका उपभोग करता है। और ऋण चुकाने का समय आने पर उतना ही द्रव्य देते हुए उसे दुःख नहीं होता। उसी प्रकार पूर्व में स्वयं बांधे हुए पापकर्म का फल भोगने वाले ज्ञानी को दुःख कैसा ?''

''जैसे राजा को साक्षी बनाकर किये गये कार्य में विसंवाद करनेवाला पुरुष राजा की अवज्ञा करने का दोषी होता है। वैसे ही अरहन्त आदि पंचपरमेष्ठी की साक्षीपूर्वक स्वीकार किये गये त्याग को तोड़ने वाला मुनि अरहन्त आदि को भी प्रमाण न मानने से उनकी अवज्ञा करने का दोषी होता है।''

“महामत्स्य आहार के ही कारण सातवें नरक में मरकर जाता है और उसी महामत्स्य के कान में रहनेवाला सालिसिक्थ मत्स्य भी आहार के संकल्प से मरकर सातवें नरक जाता है।”

“जैसे ईंधन से आग को और हजारों नदियों से समुद्र को तृप्ति नहीं होती वैसे ही यह जीव आहार से तृप्त नहीं हो सकता।”

"जैसे समुद्र को पीकर जो तृप्त नहीं हुआ वह ओस को चाटने से तृप्त नहीं हो सकता। उसी प्रकार जब तुम समस्त पुद्‌गलों को खाकर भी तृप्त नहीं हुए तब मरते समय आज भोजन से कैसे तृप्त हो सकते हो ऐसा निर्यापक आचार्य क्षपक से कहते हैं।"

"जैसे उत्तम घोड़ा बड़ा तेज दौड़ता है वैसे ही आहार भी जिह्वा के मूल को बड़े वेग से पार करता है अर्थात् जिह्वा पर ग्रास आते ही वह झट पेट में चला जाता है। बस जिह्वा पर रहते हुए ही जीव को आहार के स्वाद की प्रतीति होती है, न पहले होती है और न बाद में।"

**''जैसे मधु से लिप्त तलवार की धार को चाटने से तत्काल सुख होता है किन्तु जीभ कट जाती है वैसे ही मरते समय यदि अर्हन्त आदि की साक्षीपूर्वक त्यागे हुए आहार की अभिलाषा करता है और उसे खाता है तो तत्काल उसे अपनी इच्छापूर्ति होने से सुख प्रतीत होगा, किन्तु उसकी सब आराधना गल जायेगी।''**

''जैसे वणिक् रत्नों से भरी नावों के साथ नगर के समीप तक आकर भी प्रमादवश मूढ होकर सागर के जल में डूब जाते हैं। उसी प्रकार पहले विशुद्ध भाव से शरीर की सल्लेखना करने वाले भी कुछ क्षपक रागद्वेषादि भावरूप विविध परिग्रहों के साथ संथारे पर आरूढ़ होते हुए भी संक्लेश परिणामों के कारण विनाश को प्राप्त होते हैं।''

''जैसे अभेद्य कवच के द्वारा सुरक्षित योद्धा युद्धभूमि में शत्रुओं के वश में नहीं आता तथा शत्रु पर प्रहार करने में समर्थ होता है और शत्रुओं को जीत लेता है। उसी प्रकार कवच से सुरक्षित क्षपक परीषह आदि के वश में नहीं आता तथा ध्यान करने में समर्थ होता है और उन परीषहरूपी शत्रुओं को जीत लेता है।''

''एक धागे को दोनों ओर से तानने पर जैसे उसमें कुटिलता नहीं रहती, सरलता रहती है उसी प्रकार की सरलता को आर्जव कहते हैं।''

''जैसे नाव पर सवार यात्री अपने-अपने स्थान पर चले जाते हैं उसी प्रकार हमारे सम्बन्धी अपने-अपने परिणामों के अनुसार गति नामकर्म का बन्ध करके मरकर अपनी-अपनी गति में चले जाते हैं।''

''जैसे नाना दिशाओं और नाना देशों से आये हुए और भिन्न-भिन्न स्थानों को जाने वाले पथिक मार्ग के समीप में स्थित अत्यन्त घने पलाश आदि वृक्षों के फैले हुए शाखा भार से सूर्य के तेज को दूर करने वाले वृक्षों की शीतल और घनी छाया में अपना समाज बनाकर बैठते हैं और धूप ढलने पर अपने-अपने स्थानों को चल जाते हैं। उन्हीं की तरह मित्र, बन्धु और परिजनों के साथ सहवास भी अनित्य है।''

''जैसे पक्षी सूर्य के अस्त होने पर हम अमुक वृक्ष पर मिलेंगे, ऐसा परस्पर में संकल्प नहीं करते। फिर भी जिस किसी प्रकार कुछ समय के लिये परस्पर में मिल जाते हैं। उसी प्रकार संसार के प्राणी भी समान कालरूप वायु से प्रेरित होकर एक कुलरूपी वृक्ष पर कुछ दिनों के लिये आ मिलते हैं।''

''सर्व जीवलोक में आयु पहाड़ी नदी के प्रवाह की तरह दौड़ती है। सुकुमारता भी पूर्वाह्न की छाया के समान दौड़ती है। जैसे-जैसे सूर्य ऊपर उठता है वैसे-वैसे शरीरादि की छाया घटती जाती है। उसी तरह ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती है त्यों-त्यों सुकुमारता कम होती है।''

''जैसे अपराह्न काल में वृक्षों की छाया बढ़ती है वैसे ही लोक में एक बार आने पर बुढ़ापा बढ़ता जाता है। यह बुढ़ापा सुन्दरतारूपी कोमल पत्तों के लिये वन की आग की लपट के समान है। सौभाग्यरूपी पुष्पों के लिये ओलों की वर्षा के समान है। तारुण्यरूपी हरिणों की पंक्ति के लिये व्याघ्र के समान है। ज्ञानरूपी नेत्र के लिये धूल की वर्षा के समान है। तपरूपी कमलों के वन के लिये बर्फ गिरने के समान है।''

‘‘जैसे मार्ग में धूली से रचा गया आकार शीघ्र नष्ट हो जाता है वैसे ही जीवों का बल शीघ्र नष्ट हो जाता है।’’

‘‘जिसने शास्त्राभ्यास करके आगमिक बुद्धि प्राप्त नहीं की है वह हितकारी धर्म को उसी प्रकार नहीं देख सकता, जैसे दृष्टिसम्पन्न पुरुष रूप को देखते हुए भी भाषा के बिना उसको कह नहीं सकता।’’

“जैसे अन्धा पुरुष हाथ में दीपक होते हुए भी उसका फल नहीं पाता। जिसके लोचन मुंदे हैं उसे दर्पण से क्या लाभ ? जो न दान देता है न भोगता है उसे धन से क्या लाभ ? जो डरपोक है उसे युद्ध में शस्त्र से क्या लाभ ? इसी तरह मन्दबुद्धि पुरुष को शास्त्र से क्या लाभ ?”

''जैसे नदी में गया जल फिर वापिस नहीं आता। उसी प्रकार यौवन भी जाकर वापिस नहीं आता।''

''अन्धकार में प्रवेश, जल में डूबना और जेलखाने में पड़े रहना तो एक ही भव में दुःखदायी है किन्तु अज्ञानजन्य दुःख अनन्त भवों में दुःखदायी है।''

''जैसे निरंकुश मत्त हाथी कमलिनी के वन को उजाड़ देता है वैसे ही कर्म समस्त जगत को मसल देता है।''

''चलता हुआ प्राणी भूमि को लांघ सकता है। तैरता हुआ प्राणी समुद्र को तैर सकता है, किन्तु उदयागत कर्म के फल का उल्लंघन कोई महाबली भी नहीं कर सकता। उसे सबको भोगना पड़ता ही है।''

''जैसे कोई सिंह किसी मृग को पकड़ ले तो दूसरा मृग उसकी रक्षा नहीं कर सकता या तिमिंगल नामक महामत्स्य किसी मच्छ को पकड़ ले तो दूसरा मच्छ उसको नहीं छुड़ा सकता, उसी प्रकार कर्म का उदय आने पर जीव का कोई शरण नहीं होता।''

''यह जीव अपने कर्मफल को स्वयं ही भोगता है उसी प्रकार जैसे अपनी आयु समाप्त होने पर अकेला ही प्राणों को त्यागता है, दूसरा कोई भी उसका सहायक नहीं है।''

''जैसे विष दुःखदायी है, प्राण हरण कर लेता है वैसे ही अर्थ भी जो उसके रक्षण में लगता है उसे दुःख देता है तथा प्राणों के विनाश में निमित्त होता है।''

"जो जिसके रहते हुए भी उत्पन्न नहीं होता वह उसका कारण कैसे हो सकता है? जैसे जौ बोने पर आम का अंकुर पैदा नहीं होता अतः आम के अंकुर का कारण जौ के बीज नहीं है। उसी प्रकार असातावेदनीय का उदय होते हुए भी यदि दुःख नहीं होता तो असातावेदनीय दुःख का कारण नहीं हो सकता।"

**''जैसे प्रत्येक रात्रि में वृक्ष पर पक्षियों का संगम होता है उसी प्रकार जन्म-जन्म में मनुष्यों का संगम होता है। जैसे किसी उपाश्रय में पथिक विभिन्न ग्राम नगर आदि में परस्पर में मिलते हैं, पीछे वे सब उस उपाश्रय को छोड़कर अपने-अपने देश को चले जाते हैं। उसी प्रकार सब बन्धु बान्धवों का समागम है।''**

“जैसे रेत का प्रत्येक कण अपना भिन्न स्वभाव रखता है। किसी मिलाने वाले द्रव्य के बिना उनका परस्पर में कोई स्वाभाविक सम्बन्ध नहीं है। पानी आदि के सम्बन्ध से ही वे परस्पर में मिलते हैं अन्यथा मुट्ठी में अलग-अलग ही रहते हैं, इसी प्रकार स्वजन भी कार्यवश ही परस्पर में मिलते हैं।”

''संसार को महासमुद्र की उपमा दी है। समुद्र में जल होता है संसार में दुःख ही जल है। जैसे जल का आरपार नहीं है वैसे ही संसार के दुःख का भी आदि अन्त नहीं है। समुद्र में पाताल होते हैं जिनमें प्रवेश करके निकलना कठिन है। संसार में जो अनन्तकाय निगोद हैं वही पाताल है उसमें प्रवेश करके निकलना कठिन है। समुद्र में भँवर होते है। संसार में परिवर्तनरूप भँवर है। समुद्र में द्वीप होते हैं जहाँ कुछ समय ठहर सकते हैं। संसार में चार गतियाँ ही द्वीप हैं। इसी प्रकार समुद्र भी अनन्त है और संसार भी।''

"कर्मरूपी भाण्ड (नट) से भरा हुआ जीवरूपी जहाज शुभ अशुभ परिणामरूप वायु से युक्त अति भयंकर संसार महासागर में प्रवेश करके चिरकाल तक भ्रमण करता है।"

"जैसे रंगभूमि में प्रविष्ट हुआ नट अनेक रूपों को धारण करता हैं उसी प्रकार द्रव्य-संसार में भ्रमण करता हुआ जीव निरन्तर अनेक आकार, रूप, स्वभाव आदि को ग्रहण करता और छोड़ता है।"

"घटीयन्त्र की तरह जीव यह शरीर को छोड़कर अन्य शरीर को ग्रहण करता है। उसे भी छोड़कर अन्य शरीर को ग्रहण करता है। जैसे घटीयन्त्र नया जल ग्रहण करता है उसे निकालकर फिर नया जल ग्रहण करता है। उसी प्रकार यह जीव शरीरों का ग्रहण करता और छोड़ता हुआ भ्रमण करता है।"

''जैसे गिरगिट नित्य ही नाना प्रकार के रंग बदलता है वैसे ही यह जीव अध्यवसाय स्थानों को धारण करता हुआ परिणमन रहता है।''

''जैसे खरगोश व्याध से सताया जाने पर बिल समझकर अजगर के मुख में प्रवेश करता है। वह उसे अपना शरण मानकर मृत्यु के मुख में प्रवेश करता है। उसी प्रकार अज्ञानी जीव भूख प्यास आदि व्याधों के द्वारा पीड़ित होने पर महान् दुःख में निमित्त संसाररूपी सर्प के मुख में प्रवेश करते हैं।''

"यह जीव जन्म से ही अन्धा, बहिरा, गूँगा होता है और भूख तथा प्यास से पीड़ित होकर जैसे कोई मार्ग भूलकर वन में अकेला भटकता है उसी प्रकार मोक्षमार्ग से भ्रष्ट होकर जन्मरूपी वन में अकेला भ्रमण करता है।"

"जैसे कोई एक आग से निकलकर दूसरी आग में प्रवेश करके कष्ट उठाता है, वैसे ही यह जीव पूर्वबद्ध कर्मों को भोगकर पुनः नवीन कर्मरूपी आग में जलता है।"

''यह संसाररूपी चक्र ( पहिया ) विषयों की अभिलाषा रूपी आरों से जकड़ा हुआ है, कुयोनिरूपी नेमि ( हाल ) उस पर चढ़ी हुई है। उसमें सुख दुःखरूपी मजबूत कीले लगी हैं। अज्ञानरूपी तुम्बपर वह स्थित है, कषायरूपी दृढ़ पहियों से कसा हुआ है। अनेक हजार जन्मरूपी उसका विशाल मार्ग है। उस पर वह संसार चक्र चलता है। मोहरूपी वेग से अतिशीघ्र चलता है। ऐसे संसाररूपी चक्र पर सवार होकर यह पराधीन जीव भ्रमण करता है।''

''भारवाही मनुष्य तो किसी देश और काल में अपना भार उतारकर विश्राम कर लेता है, किन्तु शरीर के भार को ढोने वाले जीव एक क्षण के लिये भी विश्राम नहीं पाते।''

''जैसे देशान्तर में भ्रमण करने वाले पुरुष को सर्वत्र इष्ट-मित्र मिलते हैं उसी प्रकार इस जीव के भी जहाँ-जहाँ यह जन्म लेता है वहीं-वहीं बन्धु-बान्धव मिलते जाते हैं।''

''मद से मत्त हाथी के द्वारा वेगपूर्वक किया गया प्रहार तथा बलशाली हाथ से छोड़ी गयी तीक्ष्ण तलवार दुःख नहीं देते। उससे भी अधिक दुःख विषय देते हैं।''

''जैसे आकाश में सहसा ही शीघ्रता से इन्द्रधनुष, बिजली और मेघ प्रकट होते है उसी प्रकार देवों का जन्म उपपाद शय्या पर होता है।''

''जैसे सूर्य को उदयाचल के मस्तकपर आने को जगत में कोई नहीं रोक सकता उसी प्रकार सहकारी कारणों के मिलने पर उदय में आये कर्म को जगत में कोई रोक नहीं सकता।''

''गर्भ में होने वाली दूरवस्था का भी विचार करके वे देव महान् शोक और भय से युक्त होते हैं जैसे कोई जेलखाने से डरता है।''

‘‘जैसे कोई परवश होकर उपद्रव से युक्त अन्य देश में जाने पर विलाप करता है वैसे ही देव स्वाधीन होते हुए भी परवश होकर देवगति से मनुष्यगति में जाने का बहुत शोक करते हैं।’’

‘‘बिजली की तरह चंचल, फेन की तरह दुर्बल, रोगों से ग्रस्त और मृत्यु से पीड़ित इस लोक को देखकर ज्ञानी इसमें कैसे अनुराग कर सकता है ?’’

''जैसे कुलीन मनुष्य को यदि भोजन में जरा सा भी बाल आदि गिर जाये तो भोजन नहीं रुचता उसी प्रकार ज्ञानी को बहुत से सुख में थोड़ा सा भी दुःख मिला हो तो वह सुख नहीं रुचता।''

''जैसे पीने के पानी में मूत्र की एक बूँद भी गिरने पर वह पानी दूषित हो जाता है। जैसे अनेक गुणों से युक्त स्त्री यदि एक बार भी व्यभिचार दोष से दूषित हो जाये तो दयालु भी मनुष्य उसे त्याग देता है। उसी प्रकार दुःख का जरा सा भी अंश सब सुख को दूषित कर देता है।''

''जैसे चाँद की चाँदनी के समान होने पर भी लोग कृष्णपक्ष से द्वेष करते हैं और शुक्लपक्ष से प्रेम करते हैं। वैसे ही समान आचार होते हुए भी कोई मनुष्य लोगों को प्रिय होता है और कोई अप्रिय होता है।''

''यह शरीर रूपी कुटीया हड्डी रूपी पत्तों से बनी है। सिराएँ रूपी बल्कल ( छाल )बाँधी हुई है। मांसरूपी मिट्टी से लीपी गई है तथा अनेक अपवित्र वस्तुओं से भरी हुई है।''

''जैसे पुरुष रस्सी सांकल आदि से बंधा है रस्सी आदि में राग नहीं होता क्योंकि वे उसके दुःख में हेतु हैं, उसी प्रकार जो अपने सुख और दुःख के साधनों में भेद को जानता है उसे दुःख के हेतु, असार, अस्थिर अशुचि शरीर में राग नहीं होता।''

''जैसे कोयले को जलादि से धोने पर भी वे सफेद नहीं होते। उसी प्रकार जलादि से धोने पर भी शरीर की शुद्धि नहीं होती। निर्मल को मलीन करनेवाला अपवित्र-शरीर जलादि के सम्बन्ध से कैसे पवित्र हो सकता है। क्या मल से भरा घड़ा पानी से धोने से पवित्र हो सकता है?''

''यह जन्ममरणरूपी समुद्र विविध दोषरूपी लहरों से युक्त है तथा दुःखरूपी जलचर जीवों से भरा है। इस समुद्र में परिभ्रमण का कारण कर्म का आस्रव है।''

''जैसे समुद्र के मध्य में छेदयुक्त नाव में जल प्रवेश करता है वैसे ही संसाररूपी समुद्र में जो जीव संवर से रहित है अर्थात् सम्यक्त्व, संयम, क्षमा, मार्दव, आर्जव, सन्तोष आदि रूप परिणामों से रहित है उसके ज्ञानावरण आदि कर्मरूप जल का आस्रव होता है।''

''जैसे तेल से लिप्त शरीर में लगी हुई धूल मलरूप हो जाती है वैसे ही जो आत्मा मिथ्यात्व, असंयम और कषायपरिणामरूप तेल से लिप्त होता है उस आत्मा के प्रदेशों में स्थित कर्मरूप होने के योग्य पुद्गलस्कन्ध कर्मरूप हो जाते हैं।''

''जैसे कोई मनुष्य राख आदि के लिये बहुमूल्य चन्दन की लकड़ी को जला देता है। वैसे ही मनुष्य अति तुच्छ विषयों-के लोभ से उस मनुष्य भव को नष्ट कर देता है जिसके द्वारा अतीन्द्रिय अनन्त सुख प्राप्त हो सकता है।''

''जैसे कोई मूर्ख अनेक बहुमूल्य रत्नों से भरे तथा अतिदुर्लभ रत्नद्वीप में जाकर बिना प्रयत्न के ही प्राप्त भी रत्नों को ग्रहण न करके असार और सुलभ ईधन को ही सारभूत मानकर ग्रहण करता है, उसी प्रकार जो मनुष्यभव अनेक गुणरूपी रत्नों की खान है, जिसका मिलना बहुत कठिन है उसे प्राप्त करके भी अज्ञानी ऐसे विषयसुख की अभिलाषा करता है जो तृप्ति प्रदान नहीं करता तथा पराधीन है और अल्पकाल ही रहता है।''

''जैसे कोई पुरुष नन्दन वन में जाकर भी अमृत को छोड़ विष पीता है। वैसे ही मनुष्यभव को पाकर भी मनुष्य धर्म को छोड़ भोगों की अभिलाषा करता है।''

''जैसे अपथ्य सेवन करनेवाला अपने घाव में पी पैदा करता है। अर्थात् जैसे अपथ्य सेवन करने से घाव में पीब आता है वैसे ही मन,वचन,काय की प्रवृत्ति से कर्मों का आस्रव होता है।''

''जैसे कोई मनुष्य सिरपर मुकुट माला धारण करके और हाथ में धनुष बाण लेकर भिक्षा मांगे तो शोभा नहीं देता। उसी प्रकार यदि मैं दीक्षा लेकर लज्जा त्याग दोषों को वहन करूं तो शोभा नहीं देता।''

''जैसे लकड़ी के पटिये से नाव में जल का आना रोका जाता है। वैसे ही अप्रमादरूपी पटिये से अशुभ परिणामों रूपी आस्रव द्वार को रोका जाता है।''

''जैसे जिसके हाथ में अस्त्र होता है वह चोरों से अपनी रक्षा कर सकता है उसी प्रकार कषाय के दोषों को जानने से,क्रोध आदि में निमित्त वस्तु से बचने से और कषायों के विरोधी क्षमा आदि परिणामों से कषाय को दूर किया जा सकता है।''

''जैसे कुमार्ग में जानेवाले दुष्ट घोड़ों को कठोर लगाम के द्वारा वश में किया जाता है। वैसे-ही दमप्रधान ज्ञान के द्वारा इन्द्रियरूपी दुर्दन्ति घोड़ों को वश में किया जाता है।''

''जैसे जिसके पास विद्या, मंत्र और औषध नहीं है वह सर्पों को वश में नहीं कर सकता। उसी प्रकार जिसका मन चंचल है वह इन्द्रियरूपी सर्पों को वश में नहीं कर सकता।''

''जैसे शत्रु की सेना परिखा ( कोट ) आदि से सुरक्षित नगर को नष्ट नहीं कर सकती। वैसे ही कर्मरूपी शत्रु की सेना गुप्तिरूपी परिखा आदि से युक्त संयमरूपी नगर को नष्ट नहीं कर सकती।''

“प्रमादरहित साधु समितिरूपी दृढ़ नाव पर आरुढ़ होकर छह काय के जीवों के घात से होने वाले पापरूपी मगरमच्छों से अछूता रहकर संसार समुद्र को पार करता है।”

“जैसे सुरक्षित नगर को शत्रु ध्वंस नहीं कर सकते, उसी प्रकार द्वार पर खड़े द्वार-पाल की तरह जिसके हृदय में वस्तु तत्त्वों की स्मृति बनी रहती है, दोष उसका अनिष्ट नहीं कर सकते।”

''जैसे शत्रुओं के मध्य में असहाय अन्धा व्यक्ति शत्रुओं के द्वारा पकड़ा जाता है। वैसे ही जिसे वस्तु तत्त्वों का सतत स्मरण नहीं रहता, वह दोष रूपी शत्रुओं से पकड़ा जाता है।''

''जैसे सुरक्षित भी धन उपभोग किये बिना नहीं घटता, उसी प्रकार तप के बिना कर्मों के संवर मात्र से कर्मों का क्षय नहीं होता।''

"जैसे वनस्पतियों के फल अपने समय पर भी पकते हैं और उपाय करने से समय से पहले भी पक जाते हैं, उसी प्रकार पूर्वबद्ध कर्म भी अपनी स्थिति पूरी होने पर अपना फल देते हैं और तप के द्वारा स्थिति पूरी होने से पूर्व ही फल देकर चले जाते हैं।"

"जैसे आग महान् तृणराशि को भी जलाकर खाक कर देती है, उसी प्रकार तपरूपी आग भी महान् कर्मरूपी तृणों के ढेर को जलाकर नष्ट कर देती है।"

''जैसे जल के संयोग से धूल बँध जाती है और जल के सूखने पर अलग हो जाती है। इसी प्रकार कषाय आदि रूप स्नेह के कारण जो कर्मपुद्गल जीव के साथ एकरूप होते हैं, तप के द्वारा कषाय के चले जाने पर वे जीव से पृथक् हो जाते हैं।''

''जैसे सुवर्ण पाषाण को अग्नि से फूँकने पर उसमें से सोना अलग हो जाता है, उसी प्रकार तपरूपी आग से तपाने पर कर्मरूपी धातु से घिरा हुआ जीव शुद्ध हो जाता है।''

''जिनागम में संवर के बिना केवल तप से ही सब कर्मों का विनाश नहीं कहा है, क्योंकि यदि तालाब में जल आता रहता है तो तालाब को पूर्णरूप से सुखाया नहीं जा सकता।''

''जिसने सवंररूप कवच धारण किया है, जो सम्यक्त्वरूपी रथ पर सवार है, और श्रुतज्ञान रूपी धनुष लिये हुए है वह संयमरूपी योद्धा संयमरूपी रणभूमि में ध्यान आदि तपोमय बाणों के द्वारा समस्त कर्मरूपी शत्रुओं की सेना को पराजित करके मोक्षरूपी अनुपम राज्य लक्ष्मी को प्राप्त करता है।''

''जैसे गाड़ी के चक्के में अर ( डण्डे ) होते हैं, बीच में उसकी नाभि होती है। उसी प्रकार जिनेन्द्र के धर्मचक्र की नाभि सम्यग्दर्शन है। द्वादशांगवाणी या बारह तप उसके डण्डे हैं और व्रत नेमि है। इनके आधार पर वह धर्मचक्र गतिशील होता है।''

''जैसे लवण समुद्र के पूर्व भाग में जुआ और पश्चिम भाग में उसकी लकड़ी डाल देने पर दोनों का संयोग दुर्लभ है। उसी प्रकार अनन्त संसार में मनुष्य भव का पाना दुर्लभ है।''

''जैसे अन्धकार में समुद्र के मध्य में गिरा रत्न पाना दुर्लभ है वैसे ही एक बार प्राप्त होकर नष्ट हुई दीक्षाभिमुख बुद्धिरूप बोधि संसार में भ्रमण करनेवाले जीव को प्राप्त होना दुर्लभ है।''

''जैसे बिना अस्त्र के युद्ध में शत्रु का घात करना संभव नहीं है, उसी प्रकार ध्यान हीन क्षपक कषायों को नहीं जीत सकता।''

''जैसे चलने में असमर्थ वृद्ध पुरुष को गमन करते समय लाठी सहायक होती है वैसे ही असमर्थ क्षपक का सहायक ध्यान होता है। जैसे दुग्धपान मल्ल पुरुष के बल को दृढ़ करता हैं वैसे ही ध्यान क्षपक की शक्ति को दृढ़ करता है। जैसे अपुष्ट मल्ल अखाड़े में हार जाता है वैसे ही ध्यान से रहित क्षपक काषायों से हार जाता है।''

''जैसे रत्नों में हीरा, सुगन्धित द्रव्यों में गोशीर्ष चन्दन और मणियों में वैडूर्यमणि सारभूत है। वैसे ही क्षपक के दर्शन चारित्र और तप में ध्यान सारभूत है।''

''जैसे हिंसक जन्तुओं से भय होने पर उनसे रक्षा के लिए बचाव का प्रयास करते हैं वैसे ही ध्यान दुःखरूपी हिंसक जन्तुओं से रक्षा करता है तथा जैसे संकट में मित्र सहायक होता है वैसे ही दुःखरूपी संकट में ध्यान सहायक होता है।''

''जैसे गर्भगृह वायु से रक्षा करता है वैसे ही ध्यान कषायरूपी वायु के लिये गर्भगृह है। जैसे घाम से बचने के लिये छाया है वैसे ही कषायरूपी घाम से बचाव के लिये ध्यान छाया के समान है।''

''जैसे दाह के लिये उत्तम सरोवर है वैसे ही कषायरूप दाह के लिये ध्यान उत्तम सरोवर है। जैसे शीत से बचाव के लिये आग है वैसे कषायरूपी शीत से बचाव के लिये ध्यान आग के समान है।''

''जैसे सेना और वाहनों के द्वारा समृद्ध राजा शत्रु सेना के आक्रमण के भय से रक्षा करता है वैसे ही कषायरूपी शत्रु सेना का भय दूर करने के लिये ध्यान बल वाहन से समृद्ध राजा के सामन है।''

''जैसे वैद्य पुरुष के रोगों की चिकित्सा में कुशल होता है वैसे ही ध्यान कषायरूपी रोग की चिकित्सा करने में कुशलवैद्य है।''

"जैसे अन्न भूख को दूर करता है वैसे ही विषयों की भूख दूर करने के लिये ध्यान अन्न के समान है तथा जैसे प्यास लगने पर पानी उसे दूर करता है वैसे ही विषयरूपी प्यास के लिये ध्यान पानी के समान है।"

"जैसे पुरुष के शरीर में कृष्ण आदि द्रव्य लेश्या-शरीर का रंग काला गोरा होता है। वैसे ही अभ्यन्तर में कृष्ण आदि भावलेश्या होती हैं।"

''जो व्यक्ति फल से भरे वृक्ष को जड़ से काटकर फल खाना चाहता है उसके कृष्णलेश्या है। जो जड़ को छोड़ केवल तना काटकर फल खाना चाहता है उसके नीललेश्या है। जो एक शाखा काटकर फल खाना चाहता है उसके कापोत लेश्या है। जो एक उपशाखा तोड़कर फल खाना चाहता है उसके पीतलेश्या है। जो केवल फल ही तोड़कर खाना चाहता है उसके पद्मलेश्या है। और जो जमीन पर गिरे हुए फलों को ही उठाकर खाना चाहता है उसके शुक्ललेश्या होती है।''

''जैसे ईंधन से आग बढ़ती है और ईंधन के अभाव में बुझ जाती है वैसे ही परिग्रह से कषाय बढ़ती है और परिग्रह के अभाव में मन्द हो जाती है।''

''जैसे जल में पत्थर फेंकने से नीचे बैठी हुई कीचड़ ऊपर आ जाती है। वैसे ही परिग्रह से जीव की दबी हुई कषाय उदय में आ जाती है।''

''जैसे बाहर में तुष ( छिलका ) रहते हुए चावल की अभ्यन्तर शुद्धि संभव नहीं है। वैसे ही परिग्रही जीव के लेश्या की विशुद्धि संभव नहीं है।''

''जैसे कोई पुरुष कीचड़ में फँस गया या मार्ग में थक गया तो उसको अवसन्न कहते हैं। वह द्रव्यरूप से अवसन्न है। उसी प्रकार जिसका चारित्र अशुद्ध होता है वह भाव अवसन्न होता है।''

''जैसे कोई मार्ग को देखते हुए भी उस मार्ग से न जाकर अन्य उसके समीपवर्ती मार्ग से जाता है, उसे मार्ग पार्श्वस्थ कहते हैं। इसी प्रकार जो निरतिचार संयम का मार्ग जानते हुए भी उसमें प्रवृत्ति नहीं करता किन्तु संयम के पार्श्ववर्ती मार्ग में चलता है, वह न तो एकान्त से असंयमी है और न निरतिचार संयमी है। उसे पार्श्वस्थ कहते हैं।''

''क्षपक एक तीर्थ हैं क्योंकि संसार से पार उतारने में निमित्त है। उसमें स्नान करने से पापकर्म रूपी मल दूर होता है।''

''जैसे ताड़ के वृक्ष की मस्तक सूची, ऊपर का शाम्बाभार टूट जाने पर समस्त ताड़वृक्ष ही नष्ट हो जाता है वैसे ही समस्त मोहनीय कर्म के नष्ट होने पर कर्म नष्ट हो जाते हैं।''

''जैसे गीला वस्त्र फैला देने पर वह शीघ्र सुख जाता है उतनी शीघ्र इकट्ठा रखा हुआ नहीं सूखता। कर्मों की भी वैसी ही दशा जानना। आत्म प्रदेशों के फैलाव से सम्बद्ध कर्मरज-की स्थिति बिना भोगे घट जाती है।''

''बन्धन से मुक्त हुआ वह जीव वेग से ऊपर को जाता है जैसे बन्धन से मुक्त हुआ एरण्ड का बीज ऊपर को जाता है।''

''समस्त कर्म नोकर्मरूप भार से मुक्त होने के कारण हल्का हो जाने से वह जीव ऊपर को जाता है। जैसे मिट्टी के लेप से रहित तूम्बी जल में डूबने पर भी ऊपर ही आती है।''

''जैसे वेग से पूर्ण व्यक्ति ठहरना चाहते हुए भी नहीं ठहर पाता है वैसे ही ध्यान के प्रयोग से आत्मा ऊपर को जाता है।''

**‘‘जैसे आग की लपट स्वभाव से ही ऊपर को जाती है वैसे ही कर्मरहित स्वाधीन आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगमन है।’’**

**‘‘जैसे सूर्य अपने विषयगोचर सब पदार्थों को एक साथ प्रकाशित करता है वैसे ही केवल ज्ञान सब पदार्थों को एक साथ प्रकाशित करता है।’’**

''जैसे युद्ध भूमि में कवच होता है वैसे ही कषायों से युद्ध करने में ध्यान कवच के समान है। युद्ध में बिना कवच के योद्धा की जो स्थिति है वही स्थिति ध्यान के बिना क्षपक की होती है। वह भी उसी की तरह मारा जाता है।''

''जिसमें जन्म मरणरूपी जल का समूह भरा है, दुःख संक्लेश और शोकरूपी लहरें उठा करती हैं, उस संसाररूपी समुद्र को ज्ञानीजन सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक् तपरूपी नाव से पार करते हैं।''

# मुनियों की कहानी - हार नहीं मानी

| | मुनिराज | उपसर्ग | नगर |
|---|---|---|---|
| १. | सुकुमाल मुनि | श्रृगाली द्वारा तीन दिन तक भक्षण | उज्जैनी (अवन्ती )नगरी |
| २. | सुकौशल मुनि | व्याघ्री ( माता ) द्वारा खाना | मुदगल पर्वत |
| ३. | गजकुमार मुनि | शरीर में कीलें ठोकना एवं सिर पर जलती सिगडी | - |
| ४. | सनतकुमार मुनि | १०० वर्ष तक खाज आदि रोगो को सहा | - |
| ५. | एणिक पुत्र मुनि | गंगा में नाव डूबी | - |

| | | | |
|---|---|---|---|
| ६. | भद्रबाहु मुनि | घोर भूख से पीड़ित होने पर भी घोर अवमौदर्य तप | - |
| ७. | इन्द्रदत्त आदि ३२ पुत्र | यमुना के प्रवाह में बहना | कौशाम्बी |
| ८. | धर्मघोष मुनि | गंगा तट पर एक माह तक तीव्र प्यास से पीड़ित | चम्पानगरी |
| ९. | श्री दत्त मुनि | पूर्वभव के वैरी देव द्वारा शीत वेदना | - |
| १०. | वृषभसेन मुनि | गर्म वायु-गर्म आताप को सहना | - |
| ११. | अभय घोष मुनि | चण्डवेग द्वारा सब अंगो को छेदना | काकन्दी नगरी |

राजस्थान की राजधानी जयपुर (गुलाबी नगरी) के गौरव

परम पूज्य मुनिश्री 108 संधानसागर जी मुनिराज

| | | |
|---|---|---|
| जन्म | : | 25 सितम्बर 1976 ( आश्विन सुदी-2 ) |
| जन्म स्थान | : | जयपुर ( राजस्थान ) |
| पूर्व नाम | : | बा.ब्र. रोहित भैया जी |
| पिता | : | श्री अशोक जी जैन ( काला ) |
| माता | : | श्रीमती आशा देवी जी जैन |
| मुनि दीक्षा तिथि | : | 31 जुलाई 2015, शुक्रवार, द्वितीय आषाढ़ शुक्ल 15 ( गुरुपूर्णिमा ) |
| मुनि दीक्षा स्थान | : | दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बीना बारहा, जिला-सागर ( म.प्र. ) |
| दीक्षा गुरु | : | आचार्य श्री 108 विद्यासागरजी महाराज |
| संकलित कृतियाँ | : | बाल संस्कार सौरभ ( 1, 2, 3 एवं 4 भाग ), अभिवंदना, आत्म आराधना, पूजा प्रसून, माण्डना, शान्तिधारा, हायकू, प्रमाणिक कहानियाँ ( 1, 2, 3 एवं 4 भाग ), प्रतिभागान, दीपावली पूजन, संस्कृत सूक्तियाँ, सटीक परिभाषायें, भावना भव नाशनी ( भाग - 1 एवं 2 ), अव्यय परिचय, आचार्य श्री के चेतन रत्न ( चातुर्मास-2016 ), पद्म पौराणिक कहानियाँ, धारण करें भगवती उदाहरण, हस्तलिखित आचार्य श्री के प्रवचन ( 1 से 16 ) |

visit it : http://108guruvani.blogspot.com

प्रकाशक

**निर्ग्रंथ फाउण्डेशन, भोपाल**